ओ३म्

इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार,12 मई 2013

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 12 मई, 2013 से 18 मई, 2013

वै. शु.03 ● वि० सं०–2069 ● वर्ष 77, अंक 55, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,113 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

महात्मा हंसराज दिवस पर भव्य समारोह में हुआ डी.ए.वी. विश्वविद्यालय का लोकार्पण

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिध सभा और डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति से संयुक्त तत्त्वाधान में जालंधर–पठानकोट राजमार्ग पर स्थित सरमस्तपुर में नवनिर्मित विशाल परिसर में 20 अप्रैल को आयोजित महात्मा हंसराज दिवस समारोह पर डी.ए.वी. विश्वविद्यालय का लोकार्पण 20,000 से अधिक की संख्या में उपस्थित आर्यों की साक्षी में संपन्न हुआ। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं प्रादेशिक सभा तथा प्रबंधकर्त्री समिति के प्रधान श्री पूनम सूरी ने अपने भावपूर्ण उद्बोधन में इस समारोह को एक ऐतिहासिक घटना और एक बहुत बड़ा मील–पत्थर बताते हुए महात्मा हंसराज के जन्म और डी.ए.वी. के अतीत का सुन्दर चित्र खींचा और कहा–"महात्मा हंसराज को जन्में कल 149 वर्ष हो गये, आज 150वां वर्ष शुरु हुआ है। आज बड़ी नम्रता, बड़ी श्रद्धा से, तप और त्याग की प्रतिमूर्ति उस आदर्श महामानव के श्रीचरणों में पहली डी.ए.वी. यूनिवर्सिटी जालंधर में खोली जा रही है। यह एक बहुत बड़ा कदम है।"

मान्य प्रधानजी ने डी.ए.वी. विश्वविद्यालय खोलने के विचार को 92वें वर्ष पुराना संकल्प बताया और कहा–सन् 1921 में लाला लाजपतराय के एक खुले पत्र के जवाब में महात्मा हंसराज ने लिखा था–"हमें भी एक यूनिवर्सिटी की अनुमति दी जाए। निस्संदेह हमारी यूनिवर्सिटी पूर्ण रुप से स्वतंत्र नहीं हो सकती लेकिन निश्चय ही वर्तमान अवस्था में यह बहुत उन्नत होगी। इस उद्देश्य के लिए आर्यसमाजियों को सरकार से मांग करनी चाहिए और हजारों रुपये इकट्ठे करने चाहिएँ। एक विश्वविद्यालय खोलने के लिए न्यूनतम से न्यूनतम एक करोड़ रुपय चाहिए।"

वित्तीय संसाधनों को लेकर डी.ए.वी. के चैरिटेबल स्वरूप का खुलासा करते हुए श्री पूनम सूरी ने कहा कि सौ हाथों से कमाकर हजार हाथों से धन का समाज–हित में निवेश करने का वैदिक विचार हमारा आधार रहा है। अपनी संस्थाओं से प्राप्त थोड़ी–थोड़ी बचत हमारा कोष है। न तो हम उद्योगपति हैं, न ही कोई व्यापारी। महात्मा हंसराज द्वारा प्रदर्शित संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग हमारा मंत्र रहा है। विश्वविद्यालय का स्वप्न पूरा करने में जिन व्यक्तियों, कार्यकर्ताओं, समाज–सेवियों और राजनेताओं की सहायता और सहयोग मिला है उनके प्रति प्रधानजी ने आभार व्यक्त किया। आज की परिस्थिति में जब देश में 148 से अधिक निजी विश्वविद्यालय हैं, एक और विश्वविद्यालय खुल जाने से क्या होगा ? इस संभावित प्रश्न का समाधान करते हुए कुलाधिपति ने 'डी.ए.वी.' अभिव्यक्ति के पीछे सक्रिय दर्शन की व्याख्या की और कहा कि 'डी.ए.वी.' की संकल्पना पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी ने दी और उन पूर्वजों ने सोचा होगा कि डी.ए.वी. का ढांचा दो आधार–स्तंभों पर खड़ा होगा–एक ओर 'डी' (दयानन्द) और दूसरी ओर 'वी' (वैदिक)। इन्हीं दो आधार–स्तंभों को लेकर बना डी.ए.वी. का भवन और अब डी.ए.वी. विश्वविद्यालय। मान्य प्रधानजी ने दयानन्द और वेद को कभी न भूलने का आह्वान करते हुए कहा कि विश्वविद्यालय के लोकार्पण से पूर्व दो दिन तक 'चतुर्वेदशतक यज्ञ' का आयोजन इसी विचार को पुष्ट करने के लिए किया गया।

मान्य प्रधानजी ने लाहौर में आर्यसमाज के उन दो कमरों का भावुक शब्दों में स्मरण किया जहाँ पहला डी.ए.वी. स्कूल 1886 में आरम्भ हुआ था। आर्यसमाज को डी.ए.वी. की मां बताते हुए कहा–आज डी.ए.वी. के पास हज़ारों वर्ग मीटरों में निर्मित भवन हैं, पर याद रहे कि हमारा जन्म तो उन दो कमरों में हुआ जो आर्यसमाज द्वारा दिये गये थे। उन्होंने आगे कहा कि स्वयं महात्मा हंसराजजी ने एक पत्र में लिखा था–"मैं अपने आपको या किसी अन्य व्यक्ति को डी.ए.वी. का संस्थापक नहीं मानता। डी.ए.वी. की स्थापना की है आर्यसमाज ने। यह आर्यसमाज की भावनाएं हैं, उनके उसूल हैं, उनके नियम हैं जो डी.ए.वी. को दिन–दुगुनी रात–चौगुनी उन्नति की ओर ले जा रहे हैं।" उन्होंने सभी प्राचार्यों, अध्यापकों तथा कर्मचारियों का आह्वान किया कि आर्यसमाज जो हमारी मां है उसकी सेवा तथा रक्षा करने में पूर्ण मनोयोग से जुट जाएं।

श्री पूनम सूरी ने डी.ए.वी. विश्वविद्यालय खोलने की स्वीकृति देने और इसकी आधार शिला रखने के लिए स्व. श्री ज्ञान प्रकाश जी चोपड़ा की कृतज्ञता भरे शब्दों में याद किया। मान्य प्रधानजी ने सार्वदेशिक सभा में व्याप्त फूट पर अपनी हार्दिक चिंता व्यक्त की और एकता बनाने की प्रार्थना की।

शेष पृष्ठ 12 पर

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 12 मई, 2013 से 18 मई, 2013

समित्पाणि शिष्य के उद्गार

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

एतास्ते अग्ने समिधः, त्वमिद्धः समिद् भव।
आयुरस्मासु धेहि, अमृतत्वमाचार्याय।।

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः** छन्दः **अनुष्टुप्**।

● **(अग्ने)** हे यज्ञाग्नि! **(एताः)** ये **(ते)** तेरे लिए **(समिधः)** समिधाएँ [हैं], [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [इनसे] **(त्वं)** तू **(इत्)** निश्चय ही **(सम् इद्धः)** संदीप्त **(भव)** हो। **(अस्मासु)** हम [ब्रह्मचारियों] में **(आयुः)** जीवन, [और] **आचार्याय** (आचार्य) के लिए **(अमृतत्वम्)** अमरत्व **(धेहि)** प्रदान कर।

● मैं समित्पाणि होकर आचार्य के समीप उपनीत होने तथा विद्याध्ययन करने आया हूँ। अपने हाथ में मैं समिधायें इस निमित्त लाया हूँ कि इनसे मैं अग्निहोत्र करूँगा, समिधाओं को एक–एक कर अग्नि में आहुति दूंगा।

हे यज्ञाग्नि! ये तेरे लिए समिधायें हैं, इनसे तू समिद्ध हो, सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त हो। देखो, ये शुष्क समिधायें, जो सर्वथा निस्तेज थीं, अग्नि में पड़कर प्रज्ज्वलित हो उठी हैं। ऐसे ही मुझे भी आचार्य–रूप अग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान एवं सत्कर्मों से प्रज्ज्वलित होना है। मैं निपट अबोध–अज्ञानी बालक अप्रज्ज्वलित समिधाओं के समान ही निस्तेज हूँ, आचार्याधीन गुरुकुल–वास करके मुझे ज्ञान की ज्वालाओं से प्रदीप्त होना है।

आचार्य और ब्रह्मचारियों के मध्य में जलनेवाली हे यज्ञाग्नि! तू हम ब्रह्मचारियों को आयु प्रदान कर, हमारे अन्दर जीवन निहित कर। हम यही नहीं जानते कि इस संसार में किसलिए आये हैं और हमें कहाँ जाना है तथा जीवन किस प्रकार व्यतीत करना है। जीवन जीने की कला का बोध तू हमें करा। हे अग्नि! तू गुरुकुल की गुरु–शिष्य परम्परा का उज्ज्वल प्रतीक है। जो समिधाओं का और तेरा सम्बन्ध है, वही घनिष्ठ सम्बन्ध गुरुकुल में गुरु और शिष्यों का है। गुरुकुल के व्रतपालन, गुरुकुल की दिनचर्या, गुरुकुल के ज्ञानाग्नि–समिन्धन, गुरुकुल की कर्मपरायणता, गुरुकुल की तपस्या, गुरुकुल के संयम, गुरुकुल के योगानुष्ठान आदि सबका तू प्रतीक है। हे व्रतपति अग्नि! तुझमें समिधायें डालते हुए हम इन समस्त भावनाओं को अपने हृदय में धारण करते हैं।

हे गुरुकुलीय अग्निहोत्र की अग्नि! जहाँ तू हमें जीवन प्रदान करेगी, वहाँ हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान कर। हम ही अपने आचार्य को मार सकते या अमर कर सकते हैं। हम तुझ अग्नि में तपकर ऐसे जीवन के धनी बनें कि हमसे आचार्य की कीर्ति चारों ओर फैले। जब कोई हमें गुणी और सत्कर्मनिष्ठ देखकर पूछेगा कि ये किस आचार्य के शिष्य हैं, तब हमारे आचार्य का नाम अमर होगा। हम यदि आचार्य के नाम को अमर करने में किंचिन्मात्र भी कारण बन सकेंगे, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। हे गुरुकुल के अग्नि! तुम्हारी जय हो, हे गुरुकुल के पुण्यश्लोक आचार्य! तुम्हारी जय हो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी कह रहे थे कि जीवन में ऐसी बातें हो जाती हैं जिनसे हम दुःखी हो जाते हैं लेकिन बाद में पता चलता है कि जिसे हम बुराई समझ बैठे थे तो वह तो प्रभु कृपा थी, उससे बड़ी भलाई हो ही नहीं सकती थी।

अपनी बात को पुष्ट करते हुए श्री देशबन्धु गुप्ता और श्री देवदास गांधी का प्रसंग सुनाया और कहा अपने विश्वास में कमी न आने दो। ईश्वर जो कुछ करता है तुम्हारी भलाई के लिये करता है। उस पर विश्वास करो।

मन में विज्ञान की सच्चाई का प्रवेश होने दो। विज्ञान की वास्तविकता को समझो। चिन्ता, निराशा, दुःख भरे, क्रोध भरे विचारों को अपने मन से परे रखो।

मन से ही बन्धन होता है, मोक्ष भी, सुख भी, दुःख भी।

मन को वश में रखने का उपाय बताते हुए स्वामी जी ने अपनी बात समाप्त की

अब आगे.....

तीसरा दिन

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे।।

विद्वन्मण्डल, मेरी प्यारी माताओ और सज्जनो ! पिछले दिन मानसिक तप की हम कर रहे थे–

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।

'मन प्रसन्न हो शान्त और गम्भीर। इन्द्रियाँ वश में हों। मनुष्य बातूनी न हो–हर समय गप्पें न हाँकता रहे और भावनाओं में पवित्रता हो–इन सब बातों का नाम मानसिक तप।'

यह बात भगवान् कृष्ण ने गीता के सत्रहवें अध्याय में कही है। इससे पूर्व उन्होंने उस तप की निन्दा भी की है जिसमें लोग शरीर को सुखा देते हैं, हाथों को सुखा देते हैं, हाथ रहते हुए भी हाथ से नहीं खाते, वृक्ष से उलटा लटक जाते हैं, कीलों पर बैठ जाते हैं अथवा चारों ओर अग्नि जलाकर जलती धूप में बैठ जाते हैं। स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा–

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।।

'शास्त्र जिसकी आज्ञा नहीं देता, जो लोग इस प्रकार का घोर अर्थात् भयानक तप करते हैं वे या तो काम, क्रोध, लोभ और मोह में फँसे हुए हैं या फिर अहंकार के कारण दूसरे लोगों को धोखा देने का प्रयत्न करते हैं।' वस्तुतः यह तप नहीं, अपितु पाप है। बहुत स्पष्ट रूप से उन्होंने कहा–

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्।।

'जो लोग शरीर में बैठे हुए देवताओं को और इनसे भी अधिक गहराई में बैठे हुए मुझे अर्थात् आत्मा को निर्बल करते हैं, सबको सुखाने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें हे अर्जुन! तू राक्षस समझ, मनुष्य नहीं।'

कुछ लोग इस प्रकार के तप को शारीरिक तप कहते हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा, यह शारीरिक तप नहीं है; वास्तविक शारीरिक तप है–

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

यह है शारीरिक तप–

ज्ञान गुरू द्विज देव को पूजे मृदु शुचि होय।
ब्रह्मचर्य रहे हिंसा तजे तप–शरीर है सोय।।

परन्तु हम बात कर रहे थे इस घोर–घने जंगल में उस प्रभु को पाने की, जो जीवन का लक्ष्य है, सबसे बड़ा सुख, सबसे बड़ा आनन्द सबसे बड़ी शक्ति, सबसे बड़ी शान्ति, जो एकमात्र साथी है और जिसके अतिरिक्त सभी साथी 'चार दिन की चाँदनी और फिर अँधेरी रात।' साथी कहाँ? तू कहाँ? किसी को कुछ पता नहीं। उस सच्चे साथी को पाने की बात हम कह रहे थे।

सच्चे साथी के शब्द से एक कथा याद आती है, पहले भी कई बार सुनाई है; आप भी सुनिये–

एक था युवक–ब्राह्मण का बेटा रामदास, जाति का गुसाईं। एक गाँव में अपने पिता के साथ रहता था। पिता मन्दिर में पूजा करते थे। लोगों के घरों में मन्त्र आदि भी पढ़ते थे। बेटा रामदास उन्हें देखता, उनसे प्यार भी करता परन्तु उस विद्या को प्राप्त न कर सका। तब एक दिन आया जब रामदास के पिता का देहान्त हो गया। माता पहले ही नहीं थी। दूसरा कोई सम्बन्धी भी नहीं था। पिता भी चले गये तो रामदास के लिए यह संसार सूना हो गया। कभी उसने अपने पिता से भगवान् का नाम सुना था। दुःखी अवस्था में उसने सोचा, उसी भगवान् को मिलूँगा जो सबका अपना है। परन्तु भगवान् को मिले कैसे? पाए कहाँ पर? यह तो उसे पता नहीं था। एक महात्मा के पास पहुँचा, उनसे प्रार्थना की, कहा, ''मुझे भगवान् का दर्शन करा दो, उससे मिला दो।'' महात्मा बोले, ''यह बहुत कठिन कार्य है, सरलता से होगा नहीं, इसके लिए बहुत परिश्रम करना होगा।'' रामदास ने कहा, मैं करूँगा परिश्रम।'' महात्मा बोले, ''बहुत अच्छी बात है। वह है कुटिया, उसमें बैठकर भगवान् का नाम लिया कर। भोजन तुझे मिल जाएगा। खाने और सोने से अवकाश मिलते ही जप किया कर।'' रामदास ने ऐसा करना प्रारम्भ किया। परन्तु प्रभु के लिए जो प्यार होना चाहिए वह तो उसके पास नहीं था। कुछ दिन वहाँ रहा, जप भी करता रहा। परन्तु जब कुछ हुआ नहीं तो उसने सोचा,'ये महात्मा तो मुझे ऐसे ही धोखा दे रहे हैं। यह वस्तुतः कोई विधि नहीं। शायद भगवान् भी कुछ नहीं।' इस प्रकार सोचकर एक दिन वह चुपके से उठा, कुटिया को छोड़कर अपने गाँव में आ गया। निराश होकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। गाँव–वाले कृपा करके खाना दे देते तो खा लेता, नहीं तो उस वृक्ष के नीचे ही बैठा रहता। तभी उस गाँव में एक जमींदार ने अपनी इच्छा पूरी होने पर एक बकरी दान देने का निश्चय किया। परन्तु दान किसको दे, यह उसे पता नहीं लगा। किसी ने सुझाव दिया, ''अपना वह रामदास जो है, किसी महात्मा से शिक्षा लेकर भी आया है, उसी को बकरी दे दो।''

इस प्रकार रामदास को बकरी मिल गई। वह घास काटकर बकरी को खिलाता, नहलाता, उसका दूध पीता, उसे हर समय अपने साथ रखता। रात को उसके पास ही सो जाता। उसके जीवन में एक साथी की कमी थी, यह साथी उसे मिल गया। उसने बकरी का नाम ही साथी रख दिया। प्यार से वह उससे कहता, ''आओ साथी, यहाँ छाया में बैठो, वहाँ धूप है।'' बकरी को भी पता लग गया कि उसका नाम साथी है। जब भी उसे साथी कहकर बुलाता, तभी वह दौड़ी हुई उसके पास आ जाती। ऐसा प्यार हो गया उसे बकरी से कि उसके बिना वह एक क्षण भी रह नहीं सकता था। हर समय वह और उसका साथी, हर समय रामदास और बकरी। अब वह प्रसन्न था कि कोई अपना मिल गया; प्रसन्न था कि उसका साथी उसके पास है। परन्तु एक दिन वह बकरी पता नहीं कहाँ खो गई। रामदास ने उसको साथी–साथी कहकर पुकारा। वह आई नहीं। पागलों की भाँति वह इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ने लगा। 'साथी ओर मेरे साथी' कहकर पुकारने लगा। प्रत्येक व्यक्ति से पूछने लगा,''तुमने मेरे साथी को देखा है?'' किसी ने पूछा, कौन साथी?'' रामदास बोला, 'मेरी बकरी। लाल रंग की है, इतनी–सी।'' उस व्यक्ति ने कहा, ''ऐसी एक बकरी गाँव के परली ओर खेतों में भागी जाती मैंने देखी थी।'' रामदास 'साथी–साथी' पुकारता हुआ उस ओर भागा। वहाँ भी बकरी नहीं मिली तो दूसरे गाँव की ओर भागा। दौड़ता जाता, पुकारता जाता, 'साथी, और मेरे साथी, तुम कहाँ हो?' तभी मार्ग में वे महात्मा मिले जिन्होंने उसे भगवान् के नाम का जप करने के लिए कहा था। आश्चर्य में उन्होंने पूछा, ''अरे रामदास! तुझको यह क्या हुआ? क्या अवस्था बना रक्खी है तूने? किसको ढूँढता है?'' रामदास ने रोते हुए कहा, ''मेरा साथी खो गया है गुरु जी! मैं उसके बिना पागल हुआ जाता हूँ। मुझे कुछ नहीं सूझता। आपने कहीं मेरे साथी को देखा है?'' महात्मा जी ने पूछा, ''परन्तु तेरा साथी है कौन?'' रामदास ने रोते हुए कहा, ''एक बकरी है गुरु जी! लाल रंग की बकरी।''महात्मा ने हँसते हुए कहा, ''हत्तेरे की! अरे तू बकरी को अपना साथी बना बैठा? रामदास के स्थान पर बकरीदास बन गया? अरे पागल, तेरा वास्तविक साथी तो तेरे अन्दर है जो कभी तेरा साथ नहीं छोड़ता। जिस प्रकार तू बकरी के लिए बेचैन है, उसी प्रकार यदि उस सच्चे साथी के लिए बेचैन होता तो तेरे लिए कल्याण के द्वार खुल जाते।''

यह है साथी की कथा!

परन्तु अरे ओ रामदास को बकरीदास कहनेवालो ! तुम भी तो सोचो, तुम किसके दास बने जाते हो? कहीं मकानदास, कहीं नौकरी–दास, कहीं धनदास, कहीं मनदास, कहीं पत्नीदास, कहीं पुत्रदास। अरे! यह कितनों को साथी समझ बैठे तुम! वास्तविक साथी जानो मेरी माँ ! सच्चे साथी को पाने का प्रयत्न करो मेरी बच्ची! उस साथी को पाने का प्रयत्न करो मेरी बच्ची ! उस साथी को पाने के लिए स्वाध्याय और सत्संग की बात मैं कह चुका। तप की बात कह रहा था। उसमें भी शारीरिक तप के पश्चात् वाणी के तप का वर्णन करते हुए भगवान् श्री कृष्ण ने कहा–

'आग न लगाओ। अशान्ति उत्पन्न न करो। सत्य बोलो, परन्तु मीठा सत्य बोलो। कड़वी बात न कहो। वाणी को वेद, उपनिषद् आदि उत्तम शास्त्रों के पढ़ने में लगाओ। यह है वाणी का तप, वाचिक तप!'

और फिर मानसिक तप, जिसकी बात अब हम कर रहे हैं। मन को प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न रखना, शान्त और गम्भीर बनाए रखना, बहुत और व्यर्थ की बातें न करना , इन्द्रियों को वश में रखना, भावना को शुद्ध बनाए रखना–यह सब–कुछ मानसिक तप है।

यह संसार है न? इसमें सुख भी है दुःख भी, सर्दी भी है गर्मी भी, ऊँच और नीच भी है। इसमें शान्ति से चलते जाओ। अपने लिए चिन्ताओं के ढेर एकत्रित मत करो। चिन्ताओं के बादल आ जायँ, कष्टों की रातें आ जायें, आपत्तियों की धुआँधार वृष्टि होती हो, तो भी इस विश्वास के साथ प्रसन्न रहो कि यह सब भगवान् की शक्ति से होता है और प्रभु सबका कल्याण चाहता है, सबका भला, किसी का बुरा नहीं।

लोग कहते हैं तुम बात तो अच्छी कहते हो आनन्द स्वामी, परन्तु दुःख जब आ जाए तब करें क्या? मेरा उत्तर यह है–दुःख आए तो भोग लो, मेरे भाई! उसे सदा के लिए पल्ले मत बाँधो। यदि कोई बात हो गई तो भूल जाओ उसे। हर समय उसकी कहानियाँ न सुनाते जाओ। उसे याद न करते रहो।

एक था व्यक्ति। कभी 20 वर्ष पूर्व उसको टाइफाइड हो गया था। ज्वर हुआ, समाप्त हो गया परन्तु उसके लिये वह कभी समाप्त नहीं हुआ। जब कभी वह किसी रोगी को देखने जाता, तभी उसे अपनी कथा सुनाना प्रारम्भ कर देता, ''हाँ जी, बहुत बुरा होता है ज्वर। मुझे भी एक बार टाइफाइड हुआ था; प्रातः सायं, रात–प्रभात, कभी उतरता ही नहीं था। डॉक्टर ने मेरा खाना–पीना बन्द कर दिया। केवल ग्लुकोज् का पानी देते थे। मैं सूखकर काँटा हो गया। हड्डियों का पिंजर रह गया। कई मास तक मैं चारपाई से उठ नहीं सका।'

इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर उसकी कहानी आरम्भ हो जाती। किसी को जुकाम हो या सिरदर्द, वह अपनी कथा अवश्य आरम्भ कर देता। बीस बर्ष हो गए, मानसिक दृष्टि से उसका ज्वर उतरा नहीं। हर समय वह हड्डियों के ढाँचे की बात सोचता रहता। परिणाम यह था कि वह हड्डियों का ढाँचा ही बना रहा। वैसे अच्छा–भला था परन्तु शरीर में शक्ति कभी उसने आने नहीं दी। तो इस प्रकार मत करो मेरे भाई। कष्ट आता है तो उसका सामना करने का प्रयत्न करो। फिर उसे दूर करने का प्रयत्न करो, फिर उसे भूल जाओ, सदा उसकी रट न लगाते रहो, सदा के लिए उसे अपने वार्तालाप में स्थान न दे दो।

यह चित्त है न, इसे चित्त कहते हैं इसलिए कि यह प्रत्येक बात को पकड़ता है। इसके कई प्रकार के स्वभाव हैं। सबसे पहला स्वभाव है देखी हुई, सुनी हुई और की हुई बातों को बार–बार स्मरण करना; इसे योग की भाषा में **'प्रख्या'** कहते हैं। जब वह इस प्रकार बार–बार चिन्तन करता है, तब इन बातों की ओर उसका झुकाव होता है, लगाव होता है; इसको **'प्रवृत्ति'** कहते हैं। जब बार–बार लगाव होता है, तो उस बात में टिकाव हो जाता है, उसके अतिरिक्त दूसरी कोई बात सूझती नहीं, इसको **'स्थिति'** कहते हैं। इस प्रकार यह चित्त अच्छी या बुरी बात में टिक जाता है। इस बात को जानते हुए यह प्रयत्न क्यों न करें कि यह चित्त अच्छी बात में टिक जाए? यह ठीक है भाई कि तीन वर्ष पूर्व तुझे टाइफाइड हो गया था। यह भी ठीक है कि तू दो या तीन मास चारपाई से उठ नहीं सका था। यह भी ठीक है कि उन दिनों में तुझे उचित भोजन नहीं मिला, तू दुर्बल हो गया। परन्तु इन बीस वर्षों में उन तीन–चार मास के अतिरिक्त दूसरे कई मास भी आए। ऐसे अवसर भी आये जब तुझे कोई कष्ट, कोई रोग नहीं था। उन दिनों को याद क्यों नहीं करता? यह क्यों नहीं कहता कि देखो जी, मेरे दाँत कभी खराब नहीं हुए, मेरी आँखें कभी खराब नहीं हुईं। मैं कई–कई मील दौड़ लेता था, ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ जाता था। बम्बई में पाँच–पाँच मंज़िले मकान हैं, उनमें लिफ्ट भी लगे हैं परन्तु मैं लिफ्ट के बिना ही दौड़ता हुआ सब–की–सब सीढ़ियाँ चढ़ जाता था। ऐसी बातें याद कर। हर समय दुःख की बातें याद न कर। चित्त को प्रसन्न रखना अपना स्वभाव बना ले। दुःखी रहने को, हर समय शिकायत करने को हर समय चिन्ताओं में घिरे रहने को अपना स्वभाव मत बना।

क्रमशः......

स्वास्थ सुधा और प्राणायाम

● हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

अपने को स्वस्थ और प्रसन्न रखने के लिये प्रातः 4 से 5 बजे तक अर्थात् सूर्योदय से पहले उठकर 3–4 गिलास शुद्ध जलपान नित्य करें, उसके बाद थोड़ा भ्रमण करें (इससे मधुमेह, सिरदर्द, ब्लडप्रेशर जोड़ों का दर्द, मोटापा, कब्ज, मूत्र यकृतरोग, अम्लपित्त, गैस और आंखों के रोग दूर होते हैं)। तत्पश्चात् शौच से निवृत होकर दन्तमंजन, तेल मालिश के बाद स्नान करके सूर्यकिरण का दर्शन करें। पश्चात 75 वर्ष के आयु वाले हल्के–आसन करें। 3–4 यौगिक आसन अपने रोग के अनुसार करें। अतः जिन आसनों से आपको लाभ हो वही करें। 'स्पण्डलाइसस' के भी आसन हैं, उन्हें देखकर किया जाता है।

'प्राणायाम'–सिद्धासन या पद्मासन से बैठकर हस्तमुद्रा–दोनों घुटनों पर मणिवन्ध हाथ की कलाई–स्थितकर हथेलियों को ऊपर रखकर अंगुष्ठ एवं तर्जनी के अग्रभाग से कुण्डालाकृति बनावें। शेष तीन अंगुलियाँ सीधी रक्खें।

ऐसी स्थिति में बैठकर सर्वप्रथम दीर्घ श्वसन करें (यथाशक्ति) उसके बाद 'कपालभाति' करें (लोहार की धौंकनी की तरह) यथाशक्ति। उसके पश्चात नाड़ी शोधन 'अनुलोम–विलोम' करें। वाम नसिका पुट से एकदम बाहर सांस फेंक दें। पुनः दाहिने से वायु को खींचकर बायें से फेंकें। इस प्रकार कई बार करें। इसमें दाहिने हाथ के अंगूठे और दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठा का प्रयोग होता है अतः निश्चित अंगुलियों से नासिका को खोलते और बन्द करते रहें।

रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम के पूर्व पहले उपरोक्त प्राणायामों को करना होता है। ऋषिदयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं कि अष्टांगयोग के लिये जो–जो काम करना होता है, वह सब करना चाहिये। 'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगानि।(पातंजल, योगदर्शन)

यही सब ईश्वर प्राप्ति की सीढ़ी है, मूर्तिपूजा नहीं। मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में ऋषि ने लिखा है कि साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन तुरन्त ग्रहण करने उसी के एक–एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसीके गुण, कर्म स्वभाव का विचार करता करता आनन्द में मग्न स्थिर हो जाता है, और साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावे क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है। (स. प्र. एकादश, समु.)

जप–उस प्राण से भी प्रिय सर्वरक्षक प्रणव परमात्मा का बार–बार स्मरण ही जप कहलाता है। अतः परमात्मा के नाम का बार–बार स्मरण करना चाहिये। नाम स्मरण के लिये वेद ने उपदेश किया है:–**ओ३म् क्रतोस्मर**। (यजु. 40, 15) अर्थात् है कर्मशील जीव! तू इस जीवन को प्राप्त कर, उस प्रभु के मुख्यनाम **'ओ३म्'** का स्मरण कर। बार–बार श्रद्धापूर्वक (जीवनदाता) **ओ३म्** का जाप करने से **'ओ३ मप्रतिष्ठ'** (यजु.2,13) साधक के प्राण, मन, बुद्धि, हृदय तथा ध्यान में श्रद्धापूर्वक ईश्वर की प्रतिष्ठा–स्थिति होती है, तभी साधक की साधना आगे बढ़ती है।

योगदर्शन में इसी रहस्य को खोलने के लिये **तस्यवाचकः प्रणवः** (समाधिपाद सूत्र 27 कहा है। इस नाम को स्मरण करने से परमात्मा के अन्य (ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि) सब नामों का बोध हो जाता है और विविध नामों से जो स्तुति उस परमात्मा की, की जाती है उन सबकी पूर्णता इससे होती है। इसलिये **तज्जपस्तदर्थभावनम्** (योगदर्शन, समाधिपाद सू. 28) उस परमात्मा को जो ओम् (वह प्राण से भी प्रिय, सर्वदुःख नाशक और सब सुख दाता) है का चिन्तन करना चाहिये, यह उपदेश किया है जिसे वेद ने मन और बुद्धि को लगाकर तथा **"नमोभिः"** पद से स्पष्ट किया है।

योगाभ्यास में प्राणायाम के साथ–साथ जप भी करना चाहिये। यदि प्राणायाम न भी करें तो केवल एक मन से अपने चेतन स्वरुप के माध्यम से ज्ञानपूर्वक ओम् का जप करने से भी **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'** के अनुसार–चित्त की वृत्तियों के निरोध से मन और प्राण का योग होने लगता है। **प्राणायाम–'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य'** (योगसमाधियादे. सू.34)

प्राणायाम करने वाले को चाहिये कि सुखासन=पद्मासन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन की स्थिति में बैठें। पीठ, ग्रीवा और शिर को सीधा रक्खें और दोनों हाथों को दोनों जानुओं पर रक्खें। इधर–उधर दृष्टि न रखकर हृदय अथवा भृकुटी में दृष्टि रखकर, भीतर की वायु को बलपूर्वक बाहर निकालकर बाहर ही रोकें। वायु को बाहर फेंकते समय मलद्वार का संकोचन ऊपर की ओर–और पेट, नाभि–प्रदेश को भीतर की ओर खींचने का प्रयत्न करें, जिससे मूलेन्द्रिय का आकर्षण ऊपर को हो सके। इस क्रिया से **उर्ध्वरेतस्** स्थिति उत्तरोत्तर सम्पन्न एवं दृढ़ होती है।

जब स्वांस भीतर आना चाहे तो शनैः शनैः भीतर लेते हुए नाभि के अन्दर के आर्कषण को शिथिल करता जावे, परन्तु मूलेन्द्रिय को आकर्षित किये ही रक्खें जिससे मूलबन्ध लगा रहे। मूलबन्ध प्राणायामों की सब स्थिति में लगे रहना चाहिये। इस प्रकार रेचक प्राणायाम अर्थात् बाह्यकुम्भक तीन बार करें। यह वाह्यवृत्ति प्रथम प्राणायाम है। स्वांस को भीतर ले जाकर भीतर ही रुका रहने देना' आभ्यन्तर वृत्ति है। वाह्यवृत्ति–बाहर ही रोकना। तीसरी स्थिति स्तम्भवृत्ति की है अर्थात् जिस भी स्थिति में प्राण है उसको उसी स्थिति में रोके रखना न भीतर स्वांस लेना न बाहर छोड़ना। चतुर्थ वृत्ति–वाह्माभ्यन्तर विषयाक्षेपी है–जब प्राण भीतर जाना चाहे तो उसे बारम्बार बाहर ही धकेल देना या रोकना और जब प्राण बाहर निकलना चाहे तो उसे बारम्बार भीतर धकेलने की क्रिया करने से सम्पन्न होता है। (जिस दिन पेट भारी और गैस हो उसदिन 'प्राणायाम न करें। योगाम्यासी को हल्का भोजन करना चाहिये। वैसे 'कपाल भाति' अनुलोम, विलोम करने वाले भोजन कम करते हैं) इस प्रकार योग के चतुर्थ अंग की दैनिक साधना सन्ध्या से सम्पन्न होती है। ऐसे ही प्राणायाम की स्थिति उत्तरोत्तर दृढ़ होने से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं, शरीर के नस–नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं और **'ततःक्षीयते प्रकाशावरणम्'** (योगदर्शन,21,52) के अनुसार ज्ञान का प्रकाश होता है तथा अज्ञान का नाश होता है। अभ्यासियों को चाहिये कि सर्व प्रथम बाह्यवृत्ति' प्राणायाम का अभ्यास करें जैसाकि पहले लिखा है। उसके सिद्ध होने से अन्य सभी प्राणायाम स्वतः सिद्ध होने लगते हैं।

सन्ध्योपासना के समय जब प्राणायाम करें तब गुरु आज्ञानुसार सप्तमहावृत्तियों का जप करते हुए रेचक, पूरक और कुम्भक के समय उनकी अर्थ सहित भावना करें। पश्चात् बिना प्राणायाम के उसी अवस्था में जब केवल ओम् का जप करें तब यह अनुभव करें कि वहीं से उसी से ही श्वांस प्रश्वास अर्थात् जीवन प्राप्त हो रहा है, हमारा आधार वही है। यह सब क्रिया उस 'प्रणव' के प्रति अगाध प्रेम के साथ होना चाहिये। दीर्घस्वासन, कपालभाति, नाड़ी शोधन (अनुलोम–विलोम) प्राणायाम तथा जप के समय स्वर सम कर लेना चाहिये। यदि नाक का कोई एक स्वर बन्द है तो खड़े होकर (पादचालासन) करें, स्वर सम हो जायेगा।

प्रत्याहार–'स्वविषया सम्प्रयोगो चित्तस्य स्वरुपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः'(यो. सू. 54), प्रत्याहार कहते हैं पीछे हटने को। यहां इन्द्रियों का अपने विषय से पीछे हटना अभिप्रेत है।

सूत्र का भाव यह है कि जब चित्त इन्द्रियों से मेल न रखकर अपने स्वरुप में स्थित हो तब उसकी निरुद्धावस्था होती है। बस चित्त की इसी निरुद्धावस्था का अनुकरण करके जब इन्द्रियाँ भी अपने–अपने विषय से मेल न रखकर निरुद्ध हो जावें तो इस अवस्था को प्रत्याहार कहेंगे।

"यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ये पांचों योग के बहिरंगसाधन हैं और धारणा ध्यान, समाधि अन्तरंग साधन हैं, क्योंकि जिस विषय में समाधि लगाई जाती है, वे उसी को लेकर चलते हैं, किन्तु ये तीनों ही उस असम्प्रज्ञात समाधि के बहिरंग साधना हैं। उसका अन्तरंग साधन पर वैराग्य है, जिसके द्वारा आत्मा को चित्त से मिल साक्षात कराने वाली विवेक ख्याति रूप सात्विक वृत्ति जो अष्टांगयोग की सीमा है उसका भी निरोध होकर शुद्ध परमात्म स्वरुप में अवस्थित होती है।

धारणा–'देश बन्धश्चित्तस्य धारणा (सू. 1) देश–जिस स्थान पर वृति को ठहराया जाय वह नाभि, हृदय, नासिका का अग्रभाग, भृकुटी, ब्रह्मरन्ध्र आदि आध्यात्मिक देशरुप विषय हैं। इसी को ध्येय कहते हैं, जिसमें ध्यान लगाया जाता है। **बन्ध**–अन्य विषयों से हटाकर चित्त एक ही ध्येय विषय पर वृत्ति मात्र से ठहराना है। अभ्यासियों को चाहिये कि स्वयं मूर्तिमान शरीर में जिसमें ईश्वर की महान् शक्ति आत्मा के कारण जो सूक्ष्म शरीर में व्याप्त है और जिनसे स्थूल शरीर सक्रिय है, उसी में चित्त की वृतियों को एकाग्र करें क्योंकि आत्मा के द्वारा ही परमात्मा के आनन्द को प्राप्त किया जा सकता है।

ध्यान–'तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम्' (सू. 2) धारणा में चित जिस वृतिमात्र से ध्येय में लगता है, जब वह वृति इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदय होती रहे कि दूसरी कोई और वृति बीच में न आये, तब उसको ध्यान कहते हैं।

ध्यान में ओम् भूः आदि का जप करने से मन स्थिर होने लगता है। मन की एकाग्रता से प्राण भी स्थिर होने लगता है। और जब दोनों का योग होने लगता है तब एक प्रकाश का उद्भव होता है, जिसे दृढ़ स्थिर एवं तीव्र भी करना है। जब वह स्थिर हो जावे तो उस प्रकाश में और पदार्थ भी दिखेंगे। यदि उसमें बढ़ेंगे तो और भी सूक्ष्म चीजों का दर्शन होने लगेगा। यह सब सृष्टि का विज्ञान तत्व है। यदि उस प्रकाश ध्यान को हृदय देश में ले जावेंगे और वहीं ध्यान जमावेंगे तो आत्मा का बोध तो होगा ही परमात्मा से भी योग होगा। गुरु गायत्री मंत्र के जप द्वारा भी मन एकाग्र होने लगता है। यह ओम् भूः आदि गायत्री के ही रूप हैं। गायत्री जप से जब मन थक जाय, तब ओम् के साथ तीन महाव्याहृतियों को संयुक्त करके सविता से भर्ग को धारण करें। उसके बाद केवल ओम् सत्यम् का जप करें। जब एकाग्रता बढ़ेगी तो ॐ जैसे गरगरता हुई ध्वनि भी सुनाई देगी। इससे भी मन में एकाग्रता बढ़ जाती है और आनन्द का अनुभव होने लगता है। जिस प्रकार मधु मुंह में भरकर कोई बोलता नहीं, उसके स्वाद लेने में मस्त रहता है और मुंह खोलने से मधु गिरने का भय रहता है उसी प्रकार अन्तर की

शेष पृष्ठ 9 पर

अष्टौ गुणाः पुरूषं दीपयन्ति

● प्रो. ओम कुमार आर्य

अर्थात् आठ ऐसे गुण हैं जिनके धारण करने से मनुष्य का व्यक्तित्व, उसका आचरण उसका जीवन निखर उठता है, चमक उठता है, जाज्वल्यमान् हो जाता है। यह कथन है 'विदुर नीति' अध्याय एक श्लोक 104 में महात्मा विदुर का। 'विदुरनीति' में कुल आठ अध्याय हैं जिनमें महामंत्री विदुर ने धृतराष्ट्र को जहाँ आर्य राजनीति का सदुपदेश दिया है, वहीं अन्य परिवार, समाज, राष्ट्रहित की उपयोगी बातें बताई हैं और प्रयास किया है कि महाराज धृतराष्ट्र पुत्र–मोह के पाश से बाहर निकलें, एक पिता की तरह नहीं बल्कि एक राजा की तरह शास्त्रोक्त, न्यायोचित व्यवहार करें और पाण्डु–पुत्रों को उनका हिस्सा, राज्य में उनको जो भागदेय है वह तुरंत देवें इसी में कौरव–वंश की भलाई है। श्लोक में वर्णित आठ गुणों की चर्चा से पूर्व यह बता देना भी आवश्यक है कि आजकल के स्वार्थी, पदलिप्सु, सुविधाभोगी, येन केन प्रकारेण जुगाड़ बिठाकर जनता के खून पसीने की कमाई को बेरहमी से लूट खसोट कर अपने घर और विदेशी बैंकों को भरने वाले तथा कथित मंत्री यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि महात्मा विदुर किस उच्च नैतिकता के धनी थे, कितने सिद्धान्तनिष्ठ एवं सत्य के पक्षधर थे। उनके उच्च चरित्र का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि जब महाराज धृतराष्ट्र ने उनका उचित परामर्श ठुकराकर कुरुवंश को सर्वनाश के मार्ग पर धकेल दिया तो उनके इस कृत्य से अपनी असहमति जताकर और महाराज को उनके गलत निर्णय के कारण होने वाले विनाशकारी परिणामों से सावधान करके वे (महामंत्री विदुर) महामंत्री के पद से पृथक् हो गये। आज का कोई मंत्री इतना बड़ा कदम उठाना तो दूर, उठाने की सोच भी नहीं सकता। पता नहीं राजनेताओं में यह मेरुदण्ड विहीनता, आत्म सम्मान का नितान्त अभाव और नैतिक दिवालियापन कहाँ से आ गया। ऐसी भ्रष्ट कुपरंपरा भारत की तो कभी नहीं रही। शायद जब से 'इण्डिया दैट इज (i.e.) भारत' के बीज बोये गये हैं। तभी से यह घातक, विनाशकारी महारोग (पदलिप्सा, हाय धन, हाय धन, भ्रष्टाचार आदि) इस देश में घुसा है। 'विदुर नीति' में महात्मा विदुर ने नीति–विषयक श्लोकों में वे सब उपाय सुझाये हैं जिनसे हमारा आचरण शुचि, स्वच्छ, पारदर्शी, पाक, साफ बन सकता है। और हम उपर्युक्त महारोगों से स्वयं भी बच सकते है, अपने राष्ट्र को भी बचा सकते हैं। उन्होंने जिन आठ सद्गुणों या उच्च नैतिक मूल्यों का उल्लेख किया है व अग्रलिखित इस श्लोक में हैं:–

अष्टौ गुणाः पुरूषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतंच।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं
यथाशक्ति कृतज्ञता च।।
अध्याय 1 श्लोक 104

विदुर के अनुसार व्यक्ति के जीवन को उज्ज्वल एवं आभायुक्त बनाने वाला प्रथम गुण है बुद्धिमत्ता अर्थात् बौद्धिक प्रखरता। प्रखर बुद्धि आश्रय में विवेक का वास होता है और जहाँ विवेकशीलता है वहाँ गलत निर्णय अथवा गलत कार्य होने की कोई संभावना नहीं होती। इसलिये बौद्धिक प्रखरता जीवन को चमकाने वाला गुण है। **कौल्यं** अर्थात् कुलीनता दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण है जो व्यक्ति को एक अलग पहचान देता है। कुलीनता से तात्पर्य किसी उच्च कुल या राजवंश से नहीं है, इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति के आचरण में शालीनता होनी चाहिये, उसका आचरण 'संस्कृत' हो, अन्यों के प्रति उसके मन में आदर हो। उसमें विनम्रता एवं सौभाग्य हो। हमारे सभी महापुरुष विनम्रता एवं सौभाग्य के जीवंत प्रतीक थे, यही कारण है कि आज लाखों–2 वर्ष बीत जाने के पश्चात भी उनके व्यक्तित्व की चमक, उनका आभामण्डल लेशमात्र भी फीका नहीं पड़ा है, उलटे ज्यों–2 समय बीता है उनकी चमक में और अधिक निखार आया है। किसी तथा कथित उच्च अथवा अभिजात वंश में उत्पन्न होना मात्र कुलीनता नहीं है, कुलीनता के गुण का तो आचरण–गत औदात्य एवं भद्रता से संबंध है।

'दम' अर्थात दुष्प्रवृत्तियों का दमन, उन पर नियंत्रण, अपने मनोविकारों पर प्रभावी रोक, यह सब दमन के अंतर्गत आता है। 'दमन' और 'शमन' में कोई व्यावहारिक अन्तर नहीं है, हाँ तात्त्विक अन्तर अवश्य है। प्रजाप्रति के शाश्वत उपदेश **द–द–द** में देवों के लिये अपनी वृत्तियों का 'दमन' करने का ही तो उपदेश निहित है, देवों के लिये **द=दाम्यत**। जो अपनी नकारात्मक, पतनकारी चित्तवृत्तियों का जिस सीमा तक 'दमन' करने में सक्षम है उसी सीमा तक वह 'देवत्व' का अधिकारी है। सारा अष्टांग योग इसी दमन/शमन की विस्तृत व्याख्या है, वैज्ञानिक प्रक्रिया है जो व्यक्तित्व को दीप्तियुक्त, विलक्षण और दिव्य ही नहीं बनाती बल्कि उसको समाधि तक पहुँचाकर उसका आनंद स्वरूप परमेश्वर से मिलन=योग=साक्षात्कार भी करवा देती है। **श्रुत** से अभिप्राय है शास्त्र–ज्ञान, जो स्वाध्याय, सत्संगादि से प्राप्त होता है। श्रुत से व्यक्ति कैसे निखरता है, उसका व्यक्तित्व कैसे चमक उठता है इसके जीते जागते उदाहरण देखने हों तो स्वामी श्रद्धानंद, भक्त अमीचन्द, महात्मा भक्त फूलसिंह आदि महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़नी चाहियें तब समझ में आ जायेगा कि महात्मा विदुर द्वारा बताया गया 'श्रुत' गुण व्यक्ति को कैसे चमकता है।

अगला गुण है **पराक्रम;** अर्थात शौर्य, अर्थात् विघ्न बाधाओं, झंझट, जीवन के हर उतार–चढ़ाव का साहसपूर्वक सामना करने का गुण। पराक्रम का धैर्य, सहनशीलता, अविचल आत्मविश्वास आदि से अटूट संबंध है, पराक्रम मात्र बाहुबल का ही परिचायक नहीं है यह व्यक्ति की आत्मिक शक्ति का भी द्योतक है। पराक्रम के बल पर ही योद्धा रण में विजयी होते हैं, साधक और किसी व्रत के व्रती, किसी संकल्प से संकल्पित व्यक्ति पराक्रम के बल पर ही अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं। पराक्रम का गुण जीवन में श्री, विजय और यश प्राप्त करवाने में बड़ी अहम भूमिका निभाता है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व की कान्ति को चार चांद लग जाते है। महर्षि दयानन्द ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' में महाराज भतृहरि के श्लोक को उद्धृत करके–... **न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदंन धीराः।।** की जो बात कही है उसमें **'धीर'** पराक्रमी व्यक्ति का ही पर्यायवाची शब्द कहा जा सकता है। महर्षि ने जिस संदर्भ में यह श्लोक उद्धृत किया है वहाँ 'धीरत्व' मनुष्यपनरूप धर्म' का समानार्थी है और इस सद्गुण से मनुष्य को कभी पृथक् नहीं होना चाहिए अर्थात् पराक्रमी व्यक्ति अपने सहज मनुष्यपनरूप धर्म को कभी नहीं छोड़ता। 'रामचरितमानस' में आया यह कथन–

रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जायें पर वचन न जाई

रघुवंशियों के अटल पराक्रम की ओर ही इंगित कर रहा है।

महात्मा विदुर आगे कहते हैं कि व्यक्ति का अपनी वाणी पर संयम होना चाहिये अर्थात अबहुभाषिता=मितभावी होना भी व्यक्ति की प्रामाणिकता, उसकी विश्वसनीयता, लोकप्रियता में वृद्धि करने वाला गुण होता है। यह ठीक है कि speech is silver लेकिन यह और भी ठीक है कि silence is gold. आवश्यक है कि व्यक्ति को पता होना चाहिए कि वह कब, कहाँ और क्या बोले, पर यह और भी ज्यादा जरूरी है कि व्यक्ति को पता होना चाहिए कि वह कब, कहाँ और क्या न बोले। व्यर्थ का प्रलाप व्यक्ति के छिछोरेपन का लक्षण है। मितभाषी होने के लिये यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति वाणी के इन चार दोषों से बचे– क) **पारुष्यम्**=वाणी की कटुता ख) **पैशुन्यम्**–चुगली करना ग) **अनृत कथन** अर्थात झूठ बोलना तथा घ) **असंबद्ध–प्रलाप** बेसिरपैर की, प्रसंग से विषय से जिनका कोई लेना देना नहीं ऐसी बेमतलब बातें करना। अबहुभाषिता=मितभाषिता भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को चमकाती है, उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाती है।

विदुर जी ने इस श्रृंखला में सातवाँ गुण **'दान'**=दानशीलता बताया है। प्रजापति के जिस **द–द–द** उपदेश का पूर्व में उल्लेख किया है, वहाँ एक 'द' मनुष्यों के लिये है जिसका अर्थ है **'दान'**। दान के अभाव में मनुष्य समाज का उत्थान एवं विकास रुक जाता है। शास्त्रों ने दान की महिमा का विस्तार से वर्णन किया है। 'यज्ञ' जिस 'यज्' धातु से बना है उसका भी एक अर्थ दान है। धर्म के तीन स्कन्धों में एक स्कन्ध दान है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम, महारथी कर्ण, सर्वस्व दानी भामाशाह की दानशीलता जग–प्रसिद्ध है। व्यक्ति को चमकाने या निखारने का सीधा सा अर्थ है उसके यश, उसकी कीर्ति का विस्तार करना। इस दृष्टि से दान=दानशीलता भी चमक बढ़ाने वाला गुण है।

इस सूची में अंतिम=आठवाँ गुण है कृतज्ञता का भाव। कृतज्ञता एक दैवी गुण है और इसका विलोम (कृतघ्नता) एक आसुरी दुर्गुण है, महापाप है। पंच महायज्ञ एक प्रकार से किसी न किसी रूप में कृतज्ञता भाव को प्रकट करने के ही सुकृत्य है। अतः महात्मा विदुर ने 'कृतज्ञ होना' व्यक्ति की एक महान विशेषता कही है जो उसके यश में वृद्धि करती है। इस प्रकार महात्मा विदुर ने उपर्युक्त ये आठ गुण गिनाये हैं–

प्रकार बौद्धिकता, कुलीनता, दमन, शास्त्र ज्ञान (सत्संग भी), पराक्रम, अल्पभाषी होना, दानशीलता और कृतज्ञता–जो व्यक्ति को 'दीपयन्ति' अर्थात चमकाते हैं, दिग्दिगन्त में उसके यश को फैलाते है। विदुर जी ने अनेकविध नीति–उपदेश देकर प्रयास यह किया था कि वे किसी प्रकार महाराज धृतराष्ट्र के विनाशकारी पुत्रमोह को नष्ट करके उन्हें सत्य, न्याय, धर्म के पथ पर प्रवृत्त कर पाते, ऐसा तो वे नहीं कर पाये पर इस बहाने संसार को 'विदुर नीति' के रूप में एक ऐसा दुर्लभ–ग्रन्थ–रत्न अवश्य मिल गया जिसका सानी नीति–ग्रन्थों की परंपरा में अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। हमें उनके इस अनमोल उपदेश को जीवन में धारण करना चाहिए जिससे कि हम भी अपने जीवन को सार्थक एवं सफल बना सकें। सारांश यह है कि–

युगों–2 तक कायम रहती है व्यक्ति की धमक जमाने में, कभी न कभी फीकी पड़ती लोगो उसकी चमक जमाने में।। 'विदुरनीति' में विदुर महात्मा कुछ ऐसे गुण बतलाते है जो, अपनी अनोखी चमक दमक से व्यक्ति को चमकाते है।। बुद्धिमत्ता और कुलीनता तथा दमन अपनावृत्तियों का, सत्संगादिमेंजानेसेबढ़ताहैमानव्यक्तियोंका।। पराक्रम और अल्पभाषिता से प्रतिष्ठा बढ़ती है, दानशीलता व कृतज्ञता से व्यक्ति को प्रसिद्धि मिलती है।।

उक्त गुणों के कारण–

1607/7, जवाहर नगर पटियाला चौक, जींद, हरियाणा–126102

क्षमा के महादानी स्वामी दयानन्द

● खुशहाल चन्द्र आर्य

विश्व में ऐसे अनेकों महापुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने मारने वाले को क्षमा कर दिया। किसी ने भारी नुकसान करने पर क्षमा कर दिया। किसी ने चोट मारने वाले को क्षमा कर दिया, पर स्वामी दयानन्द की क्षमा, इन सभी क्षमा करने वालों से एक अलग ही स्थान या कीमत रखती है। उनकी दानशीलता सर्वोपार्ट है। वैसे तो महर्षि ने अपने जीवन में एक नहीं दो नहीं दस नहीं अनेक स्थानों पर अपनी दानशीलता का परिचय दिया है। यहाँ हम केवल चार–पाँच ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं

राव कर्णसिंह को क्षमा किया:– मिती ज्येष्ठ बदी 13सं. 1925 तदनुसार सन् 1868 में स्वामी जी कर्णवास में अपनी पुरातन कुटियार में ही आकर ठहरे। उसी समय गङ्गा स्नान का मेला था। सहस्रों नर – नारी एकत्रित हुए थे। उसी समय राव कर्ण सिंह भी स्नानार्थ आये हुए थे। जब उसने सुना कि स्वामी दयानन्द यहाँ आये हुए और वे हमारे अवतारों की और गङ्गान जी की निन्दा करते हैं तो वह अपने नौकरों सहित स्वामी जी की कुटिया में आ गये। यह सायं का समय था, स्वामी जी उपदेश कर रहे थे। श्रोता गण एकाग्रचित उपदेशामृत–पान करने में निमग्न थे। उसी समय कर्ण सिंह ने आकर स्वामी जी से कहा कि मैंने सुना है कि तुम अवतारों की और गंगा जी की निन्दा करते हो। स्मरण रखो ! यदि मेरे सामने निन्दा की तो मैं बुरी तरह पेश आऊँगा। स्वामी जी ने कहा , मैं निन्दा नहीं करता हूँ, किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही कहता हूँ। राव बोला "गंगा गंगेति" इत्यादि श्लोकों के नाम, कीर्तन, दर्शन, स्पर्शन से पाप का नाश होता है। स्वामी जी ने कहा–ये श्लोक साधारण लोगों की कपोल कल्पित हैं। माहात्यम सब गप्प है। पाप का नाश और मोक्ष प्राप्ति वेदानुकुल आचरण से होगी, अन्यथा नहीं। यह सुन कर उसने स्वामी जी पर कुवचन–वर्षा की झड़ी सी लगा दी और आपे से बाहर हो गये और स्वामी जी के ऊपर तलवार का वार करने के लिए आगे बढ़े। वे तलवार चलाना हो जाहते थे, स्वामी जी ने झपट कर उसके हाथ से तलवार छीन ली और भूमि पर रखकर दबाब देकर तलवार के दो टुकड़े कर डाले। स्वामी जी ने कहा कि ''मैं संन्यासी हूँ , तुम्हारे किसी भी अत्याचार से चिढ़ कर तुम्हारा अनिष्ट चिन्तन नहीं करूँगा। जाओ, ईश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करे। स्वामी जी ने तलवार के दोनों खण्ड दूर फेंक कर , राव महाशय को विदा कर दिया।

एक पहलवान को सबक सिखाया:– यह सन् 1867 की सोरों की घटना है। स्वामी जी एक दिन उपदेश दे रहे थे। बीसियों मनुष्य दत्त–चित्त होकर श्रवण कर रहे थे। उसी समय वहाँ एक हट्ठा–कट्ठा, दण्डपेल पहलवान आ गया। एक मोटा सोटा कन्धे पर रखे सभा सरोवर को चीरता फाड़ता सीधा स्वामी जी की ओर बढ़ा। उसका चेहरा मारे क्रोध के तमतमा रहा था। आँखें रक्त वर्ण थी, भौवें तन रही थीं और माथे पर त्योरी पड़ी हुई थी। होठों को चबाता और दांतों को पीसता हुआ वह बोला– ''अरे, साधु! तू ठाकुर पूजा का खण्डन करता है। और श्री गंगा मैय्या की निन्दा करता है, देवताओं के विरुद्ध बोलता है। झटपट बता, तेरे किस अंग पर यह सोटा मारकर तेरी समाप्ति कर दूँ? ''ये वचन सुनकर, एक बार तो सारी सभा विचलित हो गई। परन्तु श्री स्वामी जी की गम्भीरता में रत्तीभर भी न्यूनता न आई। उन्होंने प्रशान्त भाव से मुस्कराते हुए कहा कि ''भद्र! यदि तेरे विचार में मेरा धर्म–प्रचार करना कोई अपराध है तो इस अपराध का प्रेरक मेरा मस्तिष्क ही है। यही मुझे खण्डन की बातें सुझाता है, सो यदि तू अपराधी को दण्ड देना चाहता है तो मेरे सिर पर सोटा मार, इसी को दण्डित कर। इन वाक्यों के साथ ही स्वामी जी ने अपने नेत्रों की ज्योति उसकी आँखों में डालकर उसे देखा। जैसे, बिजली कौंध कर रह जाती है, धधकता हुआ अंगारा जल धारा–पात से शान्त हो जाता है। वैसे ही तत्काल वह बलिष्ठ व्यक्ति ठण्डा हो गया, श्री चरणों में गिर पड़ा, अनवरत अश्रु मोचन करता हुआ अपना अपराध क्षमा कराने की याचना करने लगा। स्वामी जी ने उसे आश्वासन दिया और कहा, तुमने कोई अपराध तो किया ही नहीं। मुझे मारते तो कोई बात थी, अब यों ही क्यों रो रहे हो? जाओ। ईश्वर तुम्हें सत्य मार्ग प्रदान करे।''

बच्चों को लड्डू खिलाए:– स्वामी जी लाहौर से मिती आषाढ़ बदी 1 सं. 1934 तदनुसार सन् 1877 में अमृतसर पहुँचे। यहाँ वे मियां मुहम्मद खाँ की कोठी में ठहरे। उनके पधारने से अमृतसर के वासियों में धर्म–प्रेम उमड़ पड़ा। शत्–शत् और सहस्त्र–सहस्त्र पुरूष श्री दर्शनों को आने लगे। स्वामी जी ने लोगों के उत्साह को देखकर उसी दिन सायंकाल, व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। श्री के उपदेशों को सब नर नारी श्रद्धा पूर्वक सुनते थे। यहां स्वामी जी ने प्रतिमापूजन, अवतारवाद और मृतक श्राद्ध आदि मिथ्यामूलक मन्तव्यों का घोर खण्डन किया जिससे पण्डितों में हलचल मच गई। वहीं एक पाठशाला के अध्यापक पण्डित ने अपने छाटे–छोटे बच्चों से कहा ''आज कथा में हम सब चलेंगे। तुम अपनी–अपनी झोलियों में ईटों के रोड़े भर लो। वहाँ जिस समय मैं संकेत करु, तुम तत्काल कथा कहने वाले पर इन्हें फेंकने लग जाना। इसके बदले में कल तुमको लड्डू दिये जायेंगे।

वे अबोध बालन अपने अध्यापक के बहकाने में आ गये, और झोलियों में ईंटों के टुकड़े लिये व्याख्यान–स्थल पर आ पहुँचे। व्याख्यान रात के आठ बजे समाप्त हुआ करता था। थोड़ा सा अन्धेरा होते ही, अध्यापक का संकेत पाकर वे अनजान लड़के स्वामी जी पर कंकड़ बरसाने लगे। एक बार तो सारी सभा चलायमान हो गई, परन्तु स्वामी जी ने सभी को तुरन्त शान्त कर दिया। पुलिस के कर्मचारियों ने अपने चातुर्य से उन उपद्रवी बालकों में से कुछ एक को पकड़ लिया और व्याख्यान की समाप्ति पर स्वामी जी के सामने उपस्थित किया। पुलिस के पञ्जे में पड़े हुए वे बालक चिल्लाते और फूट–फूटकर रोते थे। स्वामी जी ने उनको ढाढ़स बन्धाया और ईंट मारने का कारण पूछा। तब वे हिचकियां लेते हुए बोले, ''हमको अध्यापक जी ने लड्डुओं का लोभ देकर ऐसा करने को कहा था। स्वामी जी ने करुणा भाव से तत्काल वहाँ मोदक मंगाए और उन बालकों में बांटकर कहा ''तुम्हारा अध्यापक तो सम्भव है तुम्हें लड्डू न भी देवे, इसलिए मैं ही दिये देता हूँ। ''फिर स्वामी जी ने उन ना समझ बच्चों को छुड़ा दिया।

मैंने महाराजा रणजीत सिंह की जीवनी में पढ़ा था कि एक बच्चे ने आम के पेड़ से आम तोड़ने के लिए पत्थर फेंका। संयोगवश पह पत्थर आम के न लग कर महाराजा रणजीत सिंह कहीं जाकर आ रहे थे, उनके माथे पर जा लगा । बच्चा भय के मारे रोने लगा परन्तु महाराजा ने कहा ''बच्चा रोओ मत, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। तुमने तो आम तोड़ने के लिए पत्थर आम के पेड़ पर मारा था, पर वह पत्थर वहाँ न लग कर मेरे माथे में लग गया। कोई बात नहीं, इस प्रकार कह कर बच्चे का रोना बन्द करवाया इस घटना से महाराज रणजीत सिंह की बड़ी उदारता प्रकट होती है। वे क्षमा के दानी थे, पर स्वामी जी ने बच्चों का रोना तो बन्द करवाया ही, ऊपर में लड्डू भी दिये, इसलिए स्वामी जी क्षमा के महादानी हुए।

जगन्नाथ हत्यारे को जीवन दान दिया:– यह घटना तो सर्वविदित है कि स्वामी जी उदयपुर से शाहपुरा, अजमेर व पाली होते हुए मिती जयेष्ठ बदी 8 सं. 2040 तदनुसार सन् 1883 को जोधपुर पहुँचे। यहाँ स्वामी जी का महाराजा यशवन्त सिंह ने भव्य स्वागत किया। कुछ दिनों बाद की घटना है कि महाराजा के पास स्वामी दयानन्द जी ने नन्ही जान वैश्या को बैठा देख लिया। स्वामी जी ने कहा '' केसरी की कन्दरा में ऐसी कल्मष कलुषित कुक्कुरी के आगमन का क्या काम?'' यह सुनकर नन्ही जान आग बबूला हो गई और स्वामी जी को मारने का षड्यन्त्र रचने लगी। उसने जगन्नाथ रसोइया जो स्वामी जी को खिलाता–पिलाता था, उसको पटाने का निश्चय किया। जगन्नाथ को कुछ लोभ देकर अपने वश में करके उसे दूध में ज़हर के साथ काँच पीसकर स्वामी जी को मारने के लिए कहा। जगन्नाथ वैसे तो स्वामी जी का अच्छा भक्त थे, पर लोभ में आकर वह इस दुष्कर्म को करने के लिए उद्यत हो गया। स्वामी जी को गहरी नींद आ रही थी इसलिए बिना कुछ विचारे उन्होंने दूध तो जगन्नाथ के हाथ से लेकर पी लिया परन्तु तुरन्त ही उन्हें ज्ञात हो गया कि दूध में ज़हर मिलाया हुआ था। स्वामी जी ने सेवकों से जगन्नाथ को बुलाया और कहा ''हे, जगन्नाथ! तूने यह क्या किया?'' स्वामी जी के भाव देखकर जगन्नाथ समझ गया,उसने अपनी गलती तो स्वीकर कर ली पर उसने स्वामी जी जैसे महान् परोपकारी, उदार, सहृदय, वेदों के प्रकाण्ड विद्वान, बाल ब्रह्मचारी के प्राण लेकर मानव–मात्र को जो अकल्याण किया है, इस जुल्म के लिए वह सदा के लिए कलंकित बना रहेगा । फिर स्वामी जी ने उसे 500/ पांच सौ रूपये देकर कहा'' ऐ जगन्नाथ! तुमने काम तो बहुत बुरा किया, मुझे अभी बहुत काम करना बाकी था, पर जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। ईश्वर को यही मंजूर था, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। पर अब तुम जोधपुर की सीमा से रातो–रात निकल कर नेपाल चले जाओ, नहीं तो महाराजा तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ेगा। इस प्रकार स्वामी जी, जगन्नाथके प्राण बचाकर संसार में एक अदभुत उदाहरण पेश करके, क्षमा के दानी हीं नहीं महादानी कहला गये।

180 एम.जी रोड (दूसरी मंजिल)
कोलकता – 700007

आर्य समाज का ध्वज (झण्डा) अतीत एवं वर्तमान

● डॉ. सहदेव वर्मा

धर्म, संस्कृति तथा राष्ट्र की कल्पना विश्व में (विशेष रूप से भारत में) प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस विचार का मूलाधार वेदों से ही प्रारम्भ होता है। वेदों में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। धर्म सम्बन्धी विचारों से तो समस्त वैदिक (आर्य) वाड्.मय ओतप्रोत है। जहाँ तक संस्कृति का प्रश्न है, वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस शब्द का निरन्तर प्रयोग मिलता है, **सा प्रथमा संस्कृति विश्व वारा स प्रथमो मित्रोऽग्निः।** (यजु. 7-14)। **'अर्थात्: संस्कृति रेव स प्रजापति सोऽग्नि सा यजमानः।** (शतपथ ब्राह्मण) **संस्कृतिरेव वस्तुतः सेतुर्विधृतिरेषां लोकान् सम्मेदाय।** (छन्दोग्य उपनिषद्) परन्तु यहाँ हमें विशेषकर 'ध्वज' (केतु) के सम्बन्ध में विचार करना है।

'ध्वज' शब्द का प्रयोग भी किसी न किसी रूप में वेदों में प्राप्त होता है। 'ध्वज' शब्द के पर्यायवाची (शब्द) वेदों में शिखा, केतु आदि के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अथर्व वेद के काण्ड-11, सूक्त 10, मंत्र 1 में केतु शब्द का प्रयोग 'ध्वज' के अर्थ में हुआ है। मंत्र देखिएः

ओ३म् उत्तिष्ठत संनह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह। सर्पा इतरा जनाः रक्षांस्यमित्राननु धावत।।

अर्थः- (उदाराः, हे उदार पुरुषों! (उत्तिष्ठत) उठो, और (केतुभिः सह) झण्डों के साथ (संनह्यध्वम्) कवचों को धारण करो, जो (सर्पाः) सर्पों के समान अर्थात् हिंसक (इतर जनाः) दस्यु-चोर-लुटेरे आदि तथा (रक्षांसि) जो आचार हीन है, (अमित्रान्) उन शत्रुओं पर (धावत) धावा अर्थात् आक्रमण करो।

इससे अगले मंत्र में (अरुणैः केतुभिः सह तथा सातवें मंत्र में भी **(अरुणाः सन्तु केतवः)** शब्दों का प्रयोग किया गया है। अर्थ है, कि देव जनों के ध्वज अरुण वर्ण के हों यजुर्वेद के 33 वें अध्याय के 31वे मंत्र में **'देवं वहन्ति केतवः** में भी केतु (ध्वज) शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद के छठे मण्डल के 49वें सूक्त के दूसरे मंत्र में भी **'केतुमरुषं यजध्यै'** में अरुण वर्ण के ध्वज को ऋग्वेद में पूज्य कहा गया है।

यहाँ एक विवादस्पद सी, किंवा विरोधा भासी जैसी स्थिति उत्पन्न होती है, कि 'अरुण' शब्द का अर्थ लाल है या भगवा यानी गैरिक? इस पर कुछ गम्भीरता से विचार करना होगा।

यह सर्वविदित है कि पृथिवी लोक सौर मण्डल का एक महत्त्वपूर्ण ग्रह है। प्रसिद्ध है कि पृथ्वी की रचना सूर्य से ही हुई। दूसरा ग्रह चन्द्रमा जो पृथ्वी के ही आसपास भ्रमण करता है। सूर्य के आकर्षण से ही पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती हुई गतिशील रहती है। सूर्य के ताप से ही अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ तथा भाँति-भाँति के विशाल छायादार और फलदार वृक्ष उत्पन्न होते तथा वृद्धि प्राप्त करते हैं। सूर्य के तेज से ही चन्द्रमा के द्वारा फलदार वृक्षों तथा विविध वनस्पतियों में रस का संचार होता है। मूलतः सूर्य ही पृथ्वी लोक का जीवन है।

वेद में उदय होते हुए सूर्य को नमस्कार करने का वर्णन आता है। इस उदीयमान ज्योति के पावन दर्शन कर चक्षुओं को बन्द करना और परम ज्योति के दर्शन करने का अभ्यास और साधना प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों तथा योगियों का ध्येय रहा है, अरुणोदय के उषाकालीन प्रकाश में संध्या, वन्दना, आसन, प्राणायाम आदि करने का भी एक अलौकिक महत्त्व है। उस समय की पावन वेला में सविता का मोहक अरुण प्रकाश तन-मन को अकथनीय प्रेरणा प्रदान करता है। आधुनिक कवियों ने भी इस देश को अरुण और मधुमय कहा है। भारत राष्ट्र के आदि संचालकों ने अरुण देव के इसी वर्ण को अपने ध्वज के लिए चुना। वेद का भी यही आदेश है।

इस तथ्य से भी सभी भलीभाँति परिचित हैं कि भारतीय संस्कृतिका मुख्य ध्येय यज्ञमय जीवन का विस्तार करना है। समाज, राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण के लिये तप-त्याग तथा बलिदान करना भी यज्ञ कहलाता है। परन्तु अग्निहोत्र द्वारा वातावरण का शुद्धिकरण यज्ञ का भौतिक रूप विशेष प्रसिद्ध है। अग्निहोत्र की प्रदीप्त लपटों में जिस दीप्ति, ज्योति और आभा का आभास और प्रकाश होता है, उसका प्रधान वर्ण गैरिक अर्थात् भगवा ही है। यों कथन में लपटों के लिये लाल शब्द का विशेषण भी प्रयुक्त होता है, परन्तु यज्ञाग्नि की जाज्वल्यमान ज्वाला की गगन स्पर्शी तेजोमयी स्वर्णिम लपटों का नेत्र सुखदायक वर्ण ही आर्य पताका का वर्ण है। इसे गैरिक, भगवा या काषाय भी कहा जा सकता है। अतः भारतीय ध्वज का भगवा होना सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी स्वाभाविक है। एक विचारक के शब्दों में "उदय होते हुए भुवन भास्कर की अंशुमाला में, यज्ञाग्नि की पवित्र ज्वाला में जिस दिव्य वर्ण का दर्शन होता है" वही वर्ण भारत का पावन केतु है। अतः भारत अथवा भारतखण्ड का सांस्कृतिक ध्वज प्रत्येक दृष्टि से गैरिक अथवा भगवा ही हो सकता है'

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की निर्वाण अर्ध-शताब्दी पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के आदेशानुसार (विशेष-समति ने) ध्वज-पद्धति निर्माण करने के लिए तत्कालीन आर्य जगत के विद्वानों के सुझावों के अनुसार 'ध्वज-समिति' ने निश्चय किया कि आर्य जाति के ध्वज का वर्ण गेरुआ अर्थात् भगवा हो, और उसमें सूर्य का आकार बना हो, तथा उस आकार के भीतर 'ॐ' यह परमात्मा का निज नाम चिन्हित हो।

ध्यान देने की बात यह है कि 'आर्य-समाज-ध्वज-पद्धति' में ध्वज का वर्ण लाल (भगवा) छपा है। जहाँ तक ध्वज का सन्दर्भ है, यहाँ लाल रंग से तात्पर्य भगवा वर्ण से ही है। इसका स्पष्टीकरण उस पत्र से होता है जो सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन प्रधान पूज्य मं. नारायण स्वामी जी ने एक आदेश पत्र सं. 19, दिनांक 20/2/1933 को बलिदान भवन देहली से (श्री पं. शिवदयालु जी मेरठ वालों के नाम) भेजा था, जो उस समय उस ध्वज पद्धति के मंत्री थे। पत्र इस प्रकार है-

श्रीमन् नमस्ते!

गत शताब्दी जन्म-महोत्सव के समय ध्वज का गेरुआ वस्त्र और उसको सूर्यकिरणों के साथ और उसके भीतर 'ॐ' के इस चिन्ह का होना निश्चित हो चुका है।, इसलिए इसके निश्चय की तो अब कुछ जरूरत नहीं है, बाकी उस समय के अनुरूप गीत आदि का निश्चय कर लेवें।

नारायण स्वामी
कार्यकर्ता प्रधान।

इस पत्र से यही प्रतीत होता है कि 'मथुरा जन्म शताब्दी' के समय ही सन् 1924 में आर्य ध्वज का वर्ण भगवा निर्धारित हो चुका था। इसी पत्र के आधार पर 'लाल' की परिभाषा 'गेरुआ' की गई है। पं. शिवदयालु जी ने एक स्थान पर लिखा है- 'अच्छा होता कि आर्य ध्वज पद्धति में लाल शब्द रक्खा ही न जाता जिससे कुछ आर्य समाजों तथा आर्य पुरुषों को जो वर्ण भ्रम हो गया है, वह न होता। अब भविष्य में आर्य-ध्वज-पद्धति में संशोधन कर दिया है। लाल रंग का झण्डा लगाना निश्चय ही 'मथुरा जन्म शताब्दी के निर्णय के विपरीत है, तथा पूज्य मं. नारायण स्वामी जी महाराज के आदेश के विरुद्ध है।

इस आलेख से ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक आर्य समाजों तथा संस्थाओं में (सब में नहीं) सन् 1924 से 1933 तक आर्य ध्वज का रंग लाल (वस्त्र) रहा होगा। तभी तो निर्वाण-अध शताब्दी पर मं. नारायण स्वामी जी को उपर्युक्त स्पष्टीकरण की आवश्यकता प्रतीत हुई। वर्तमान समय में तो 'ॐ' के स्थान पर 'ओ३म्' तथा चारों ओर सूर्य रश्मियों का विकीर्ण रूप भगवा वर्ण पर अंकित है। इस रूप में सर्वत्र समानता दृष्टि गोचर होती है, जो शुभ लक्षण है। परन्तु आर्य-समाज के ध्वज में अभी भी माप अर्थात् लम्बाई चौड़ाई की दृष्टि से एक रूपता नहीं है। कहीं तो यह प्रायः चकोर रूप में देखने को आता है और कहीं औसतन 1×1½ फीट के आकार में। मुझे ध्यान आता है, कि सार्वदेशिक सभी ने यही मापदण्ड रक्खा था, किन्तु कब, कहाँ इस विषय में निश्चित नहीं हूँ। तथापि माप अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई की एक रूपता भी व्यावहारिक तथा सौन्दर्य की दृष्टि से भी उचित है। इस सन्दर्भ में यह जानना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस प्रकार आर्य समाज तथा अन्य अनेक संस्थाओं ने भी अपनी ध्वजाओं में भिन्न-भिन्न चिन्ह अंकित किये हैं, यह परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही है। प्राचीन भारतीयों ने अपने ध्वजों पर कपि, मकर, मयूर, गरुड़, सूर्य, सिंह आदि चिन्ह रक्खे थे। काल क्रमानुसार ध्वज के चिन्ह तो बदल गये किन्तु उसकी मूल भित्ति गैरिक अथवा भगवा ही चली आ रही है।

ध्वज को लहराता देखकर मन में गम्भीर भावों का उदयन होता है। तन में अनिर्वचनीय सिहरन, जोश और उमंगें उठती हैं, अतः प्रत्येक सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय व्यक्ति का यह परम कर्त्तव्य है कि वह तन,मन,वचन, कर्म से ध्वज का सम्मान करे। जिन भावनाओं का जो ध्वज-प्रतीक है उन भावनाओं का सम्मान करे। आर्य ध्वज में भी 'ओ३म् की उद्दीप्त स्वर्णिम रश्मियाँ उत्कीर्ण हैं, अतः इनके माध्यम से हम उस परम-पावन ज्योति का दर्शन करें जो जगत् का कल्याण करने वाली है। अन्त में यजुर्वेद के इस मंत्र के साथ इस लेख को समाप्त करते हैं-

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।

हे परमेश्वर! आप इस जगत् के उत्पादक और प्रकाशक हैं। आपकी महिमा के दर्शन कराने के लिए सांसारिक पदार्थ वैसे ही मार्ग दिखाते हैं जैसे ध्वज (पताका) भटकते हुए मनुष्यों को मार्ग दिखाते हैं। **आशा है इस आवश्यक विषय पर आर्य विद्वत्समाज अपने विचार विस्तार से प्रामाणिक रूप से प्रकट करेगा।**

24/4 बिशन स्वरूप कालोनी
पानीपत-132103

मेरा चिन्तन–मेरा अनुभव

मुझे जेल भेज दो प्लीज

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

मान्यवर, शीर्षक पढ़कर चौंकिए मत। सबके अपने–अपने शौक होते हैं, कोई कहता है, मुझे वानप्रस्थ आश्रम में कुटिया दिला दो प्लीज, कोई कहता है मुझे नौकरी दिला दो, प्लीज। यदि मैं भी जेल जाने की बात कहूँ तो इसमें चौंकने की बात नहीं। लोग तो जेल या कारागार का नाम सुनते ही घबराने लगते हैं, थरथराने लगते हैं। और तो और, आप किसी पर बहुत नाराज हो गए तो छूटते ही कहते हैं– 'जेल भिजवा दूँगा।'

यह तो अपनी–अपनी लत है। किसी नशेड़ी से कहिए,, "नशा छोड़ दो प्लीज," क्या वह छोड़ता है? फिर भी वह बीड़ी पीता है। मैं भी आपसे स्वयं को जेल भिजवाने की बात कह रहा हूँ। आप नहीं भिजवायेंगे मैं तब भी जाऊँगा। यही मेरी लत है, नशा है, आदत है। जेल जाने का आदी हो गया हूँ। लोग नशा करके मर जाते हैं, पर मैं जेल जाकर अमर हो जाऊँगा। मैं किस्मत वाला हूँ कि मेरे लिए जेल के द्वार हमेशा खुले रहते हैं।

मेरे बारे में गलत मत सोचिए, मैं अपराधी नहीं हूँ। मैंने चोरी, डकैती, हत्या आदि किसी भी प्रकार के दुष्कर्म नहीं किए हैं। दरअसल खौफ उस चीज का होता है जिसको आपने कभी देखा न हो, पर जिसको आपने बार–बार देखा हो, जिसमें आप रचे–बसे हों, उसका भय जाता रहता है। कल्पना कीजिए, आप पिता हैं और आपके सब बच्चों को जेल हो जाती है तो तब आप क्या कहेंगे? आप यही कहेंगे कि मैं अपने बच्चों के बिना नहीं रह पाऊँगा, मुझे भी जेल भेज दो। बस, मैं भी यही कह रहा हूँ।

आप पूछ सकते हैं कि आपके बच्चे तो जेल नहीं गए, फिर जेल जाने का मोह क्यों? मैं बताता हूँ। मैं जब भी जेल जाता हूँ, **बाल बन्दियों** से मिलता हूँ तो वे मुझे अपने बच्चों जैसे लगते हैं। वे हैं तो बिगड़ैल बच्चे, पर मुझे उनके सुधरने का पूरा विश्वास है। मैं उनमें अपने बच्चों का ही प्रतिबिम्ब देखता हूँ। चाहे बाल बन्दी हों या युवा बन्दी, सबको अपने किए का पछतावा है। **क्षणिक आवेश के कारण या अज्ञान अथवा लोभवश, वे कुछ ऐसा कर बैठे जिसके कारण उन्हें जेल की यातना सहनी पड़ रही है।**

सभी बाल बन्दी मुझे गुरु जैसा आदर देते हैं, मेरे एक आदेश का पालन करते हैं, मेरे कहने पर खड़े हो जाते हैं, अपने कान पकड़ते हैं, माफी माँगते हैं, क्या इतना कम है? और कमाल की बात जब मैं कहता हूँ कि कल से नहीं आऊँगा तो गिड़गिड़ाते हैं और कहते हैं, "आप जरूर आएँ, आप जैसा कहेंगे, हम वैसा ही करेंगे।" आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ। मुझे भी उनसे प्यार हो गया है, लगाव हो गया है। मैं उन्हें मिलने के लिए तरसता रहता हूँ। मेरे बिगड़ैल बच्चे। आप उनसे जितना दूर! दूर!! दूर!!! हटना चाहेंगे मैं उतना ही उनके निकट! अति निकट!! परम निकट!!! आना चाहता हूँ। कोयले की खान में हीरे ढूँढ़ कर उन्हें तराशना चाहता हूँ।

सच बताऊँ तो रंगीन बाजार की अपेक्षा कल्याणकारी कारागार अधिक कारगर है। वहाँ अधिक स्वच्छता है, शान्ति है, अनुशासन है, भक्ति है, साधनामय जीवन है। **क्या आपको पता है, कई कारागारों में वेद मंत्र अंकित होते हैं, संस्कृत के श्लोक लिखे मिलते हैं। दोहे और कविताएँ दीवारों की शोभा बढ़ाते हैं।** मैं जिस कारगर में जाता हूँ उसके मुख्य द्वारा पर अंकित है– **'तप स्थली।'** जहाँ कारागार को सुधार गृह या तपः स्थली बनाने का प्रयास किया जा रहा हो, वहाँ क्यों न जाऊँ? यहाँ समय–समय पर धार्मिक अनुष्ठान और अन्य कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। सभी धर्म और जातियों के लोग (बन्दी कहने में मुझे कष्ट होता है) बढ़–चढ़कर भाग लेते हैं।

महाशय जी, जो कहीं नहीं होता है, वह जेल में होता है। क्या आपने किसी हिन्दू पर्व पर किसी मुस्लिम भाई को प्रसाद बाँटते देखा है? लेकिन मैंने देखा है कारागर में, और उसके हाथ से प्रसाद भी ग्रहण किया है। क्या आपने किसी मुस्लिम भाई को 'राम–राम' कहते हुए सुना है? मैंने सुना है और उसने 'राम–राम' कहकर नमस्ते का भाव प्रकट किया था और भी सुनिए, क्या कभी हवन में आपने किसी मुस्लिम साथी को माथे पर तिलक लगवाते देखा है? पर मैंने देखा है, क्योंकि हवन मैं ही करवा रहा था। क्या आप विश्वास करेंगे कि लगभग पैतालीस वर्ष का एक मुस्लिम व्यक्ति संस्कृत पढ़ाने के लिए आग्रह करे और साथ में यह भी कहे कि यह भाषा सभी भाषाओं की जननी है। **वास्तव में जेल की मानवतावादी ऊँची दीवारों के सम्मुख जातीयता की संकीर्ण दीवारें स्वयं ही ध्वस्त हो जाती है।**

आइये, केवल बाल इन्द्रियों बन्दियों को ही चर्चा करें। मैं उन्हें कठपुलियाँ ही मानता हूँ जिनकी डोर किसी और के हाथों में होती है और भुगतना इनको पड़ता है। शिक्षा के अभाव में इनका जीवन खेल–कूद, लड़ाई–झगड़ा, गाली–गलौच या बीड़ी का कश लगाने में बीतता है। **कुत्ते की पूँछ :–** अब मेरे सामने समस्या थी इन बच्चों (बन्दी नहीं) को कैसे रास्ते पर लाया जाये? मैंने कहा–

"प्यारे बच्चो, तुम इधर जेलमें बन्द पड़े हो और उधर तुम्हारे माता–पिता भी अपने घरों में बन्द पड़े होंगे। जिसका बच्चा जेल में सड़ रहा हो क्या वह किसी को मुँह दिखायेगा? बोलो,"

"नहीं" सभी एक साथ बोले।

"यदि तुम यहाँ आकर भी नहीं सुधरे और घर जाकर भी बुरी आदतों से चिपके रहे तो पता वे क्या कहेंगे?"

"क्या कहेंगे?" एक बालक ने आश्चर्य से पूछा।

"वे कहेंगे कि इससे अच्छा तो यही था कि यह जेल में ही सड़ता रहता। बोलो, वे ऐसा कहेंगे या नहीं?"

"कहेंगे।" सब एक साथ चिल्लाये।

"पता है लोग तुम्हारे बारे में मुझसे क्या कहते हो?"

"क्या कहते हैं?" सबने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

वे कहते हैं, जैसे कुत्ते की पूँछ टेढ़ी की टेढ़ी रहती है, वैसे ही ये बच्चे भी नहीं सुधरेंगे, चाहे कितनी ही कोशिश कर लो। क्या वे ठीक कहते हैं?"

"नहीं, वे गलत कहते हैं, हम सुधरेंगे" सबका समवेत स्वर गूँजा।

"नहीं, तुम नहीं सुधरोगे, तुम झूठ बोल रहे हो। मैं कल से पढ़ाने नहीं आऊँगा।" मैंने बनावटी रोष प्रकट करते हुए कहा।"

"हम सुधरेंगे, पक्का सुधरेंगे। पर आपको आना पड़ेगा।" सबने जोर देकर अपनी बात कही।

"पर तुम्हें सुधरने के लिए पढ़ना पड़ेगा।"

"सर, हमारे पास कापी–पुस्तक, पेन वगैरह कुछ भी नहीं है। एक बालक ने सबकी समस्या प्रकट कर दी।

"तुम इसकी चिन्ता मत करो, कल सारी व्यवस्था हो जायेगी।"

कौन बनेगा करोड़पति (KBC)

अगले दिन सबको कापी–पेन्सिल, पुस्तक आदि दे दी गई। कोई पूरी तरह अनपढ़ तो कोई पाँचवी फेल, कोई आठवीं पास तो कोई दसवीं फेल। कोई बारहवीं पास तो कोई पोलीटैक्नीक पढ़ाई छोड़कर जेल दर्शन के लिए आया था। सब एक साथ महाक्लास या खिचड़ी क्लास। कोई अ, आ लिख रहा तो कोई ए. बी. सी. कोई गिनती लिख रहा तो कोई स्वर–व्यंजन। अब समस्या यह थी जो छठी क्लास से बारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों को एक ही समय में एक ही घंटे में कैसे पढ़ाऊँ? मेरे मन में एक विचार सूझा। मैंने पूछा,

"बच्चो, तुमने टी.वी. में कौन बनेगा करोड़पति (KBC) प्रोग्राम देखा है।"

"हाँ, देखा है।"

जो सभी प्रश्नों का उत्तर दे दे। एक बालक चहका।

"क्या तुममें से कोई करोड़पति बनना चाहेगा?"

"कैसे?" सभी चौंक गए।

"सुनो, मैं तुम्हारे सम्मुख दस हिन्दी–संस्कृत के शब्द बोलूँगा। जो सारे दस के दस शुद्ध शब्द लिख देगा, वह करोड़पति, जिसके नौ शब्द सही होंगे वह लखपति और जिसके आठ शब्द सही होंगे, वह सहस्रपति। बोलो मंजूर है करोड़पति बनना।"

"हा, हम बनेंगे, अभी बनेंगे।" सब एक साथ जोश से चिल्लाये। मैंने कुछ पलों में अपनी गर्दन झुका ली, कहीं मैं इनके साथ छल तो नहीं कर रहा हूँ। जो एक–एक पैसे के लिए मोहताज है, जेल में लम्बी अवधि की सजा भुगत रहे हैं, कहीं मैं उनको करोड़पति बनने के सब्जबाग तो नहीं दिखा रहा हूँ। कहीं उनकी अस्मिता से घिनौना मजाक तो नहीं कर रहा हूँ। फिर मैंने अपने मन से पूछा, "क्या मैं यह सब ठीक कर रहा हूँ?"

मन ने मुझे डपट दिया, तू बुद्धू है, निरा बुद्धू। प्रवचन करता फिरता है पर अकल एक कौड़ी की भी नहीं।"

"यार, मेरी मजाक तो मत उड़ा।" मैंने सहमते हुए मन से कहा।

"सबके सामने थोड़े उड़ा रहा हूँ। सुन, ध्यान से सुन। तू इनको शुद्ध–शुद्ध लिखना सिखायेगा। फिर ये किसी भी परीक्षा में शुद्ध शब्द लिखेंगे, फिर इन्टरव्यू में शुद्ध शब्दों का उच्चारण करेंगे। इन्हीं शुद्ध शब्दों के कारण इनको शुद्ध (अच्छी) नौकरी मिलेगी। फिर जब ये शुद्ध (ईमानदारी की) कमाई से पैसे जोड़ेंगे तो करोड़पति बनेंगे कि नहीं?" मन ने आँख मटका कर कर कहा।

इस पर मुझे संतुष्टि हुई। अब तो मेरे कई बच्चे (बन्दी) करोड़पति बनने लगे। मैं रोज उनको इसी कार्यक्रम के बहाने 30–40 नये शुद्ध शब्द लिखना सिखा देता। सबमें अद्भुत उत्साह और प्रसन्नता थी। मेरे मन ने मुझे च्यूँटी मारते हुए कहा, **देख, इनके चेहरे में वह उल्लास, प्रसन्नता और मुस्कान है जो हजारों चुटकुले सुनाने से भी मिल सकती।** थोड़े समय के लिए ये भूल जाते हैं कि ये जल में हैं या खुशनुमा परिवार में?"

किस–किस ने कैंसर पिया– अब समस्या यह थी कि इनकी नशे की प्रवृत्ति को कैसे दूर किया जाये? एक दिन मैं ऐसे पूछ बैठा, 'आज किस–किसने कैंसर पिया, किस किसने टी.बी. की गोलियाँ खाई, किस–किसी ने दमा, खाँसी आदि

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

बलात्कार–मुक्त समाज के लिए नए साल में लें नए संकल्प

● सीताराम गुप्ता

नवरात्रों के प्रारंभ के साथ 11 अप्रैल 2013 को नया साल विक्रम संवत्सर् 2070 शुरू हो गया। नवरात्र यानी नारी शक्ति के विभिन्न आयामों की स्वीकृति और जनजीवन में उनकी स्थापना का पर्व। नववर्ष के प्रारंभ में नई उमंगें और नई आशाएँ एक बार फिर नए संकल्प लेने को प्रोत्साहित कर गई। परंतु क्या सचमुच दुर्गापूजा अथवा नववर्ष मनाने या नए संकल्प लेने का कोई औचित्य है भी आज की परिस्थितियों में? भारत की राजधानी दिल्ली को लोग बलात्कार की राजधानी का दर्जा दे रहे हैं। दिसंबर 2012 की हृदयविदारक सामूहिक बलात्कार की झकझोर कर रख देने वाली घटना हम देख चुके हैं जिसने न केवल एक नवयौवना पर जीते जी कहर ढाया अपितु उसके प्राण तक ले लिए। हम बहुत दुखी हैं घटना से इसमें संदेह नहीं।

हमने क्रूरता की शिकार नवयुवती को बहादुर लड़की का खिताब दिया। उसकी मृत्यु को शहादत का दर्जा दे रहे हैं। लेकिन मृत्यु को शहादत का दर्जा देने के बावजूद क्रूरता का ये सिलसिला थम नहीं रहा है। लोक बेख़ौफ़ होकर उत्पीड़न और बलात्कार की घटनाओं को अंजाम दे रहे हैं। एक बेबस, लाचार युवती नृशंसता का शिकार हुई है। न केवल उसकी अस्मिता को कुचला गया है अपितु उसके शरीर को भी रौंदा और कुचला गया है जिससे उसकी मौत तक हो गई लेकिन इसमें शहादत कैसी? हम सब अपने–अपने तरीक़े से क्यों उसे शहीद का दर्जा देने पर तुले हुए हैं? एक पीड़िता व मृतका के लिये नए–नए विशेषण गढ़ कर अथवा पुरस्कार स्थापित करके हम आख़िर सिद्ध क्या करना चाहते हैं?

लोग मृतका की स्मृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सुझाव भी खूब दे रहे हैं। जहाँ से वह बदकि़स्मत लड़की उस अभिशप्त बस में बैठी थी उस स्थान को उसका स्मारक बनाने की माँग की जा रही है। बनाइए उसका स्मारक लेकिन कितने स्मारक बनाएँगे आप? शहर में तिल रखने की जगह नहीं बच पाएगी इतने स्मारक बनाने पड़ेंगे। हर गली, हर मोड़, हर सड़क, हर बस स्टैंड स्मारक में परिवर्तित हो जाएगा। क्या स्मारक बना देने से समस्या का समाधान हो जाएगा? एक मज़लूम अथवा नृशंसता की शिकार युवती की मौत को महामंडित कर कहीं हम अपनी चरित्रहीनता, कर्तव्यहीनता, अयोग्यता अथवा विकृत मनोग्रंथियों को छुपाने का प्रयास तो नहीं कर रहे हैं?

विरोधस्वरूप लाखों की संख्या में लोग जमा हो जाते हैं। गलत चीज़ का, अत्याचार का, शोषण का विरोध किया जाना चाहिए पर गलियों के मोड़ों पर, बस स्टैंड्स पर अथवा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर जब सरेआम महिलाओं और बच्चियों से छेड़छाड़ होती है, उनका उत्पीड़न होता है तब हम लोग क्यों मूक दर्शक बने रहते हैं? क्या कारण है कि पड़ौस में होने वाली गुंडागर्दी को नज़रअंदाज कर हम राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गुंडागर्दी समाप्त करने के लिए जी–जान से जुट जाते हैं? स्मारक बनाने और पुरस्कार स्थापित करने में पूरा ज़ोर लगा देते हैं?

एक बात और, और वो ये कि जब हमारे अपने नज़दीकी लोग कोई गलत कार्य करते हैं तो हम न केवल तटस्थ बने रहते हैं अपितु उन्हें बचाने की कोशिश में जी–जान से लग जाते हैं। क्या व्याभिचार अथवा उत्पीड़न में लिप्त अपने किसी रिश्तेदार अथवा मित्र का हमने कभी विरोध या बहिष्कार किया? क्या अपने बच्चों विशेष रूप से बेटों के गलत आचरण को लेकर उनकी भर्त्सना की, उन्हें सुधारने के लिए कभी भूखे–प्यासे रह कर सत्याग्रह किया? किया तो अच्छा है क्योंकि इसी के अभाव में पनपते हैं सारे विकार!

राजनीतिक पार्टियाँ भी किसी से कम नहीं हमदर्दी दिखाने के मामले में। एक दूसरे से बाज़ी मार लेना चाहती हैं। भारत रत्न देने जैसी बेतुकी मांग भी की गई है। है कुछ नहीं केवल एक पीड़िता की मौत का राजनीतिकरण करके उससे भी लाभ उठाने का प्रयास किया जा रहा है। जहाँ तक समाज के कमज़ोर तबके की बात है स्थिति बदतर ही कही जा सकती है। आज भी दबंग किस्म के लोग कमज़ोर तबके की महिलाओं का दैहिक शोषण करते हैं और स्वयं के विरुद्ध उठने वाली हर आवाज़ को दबा देते हैं। सरकार, प्रशासन, समाज और हम व्यक्तिगत रूप से तटस्थ बने रहते हैं या लंबी–लंबी बहसें करते देखे जा सकते हैं।

लोगों से भरी बस या मेट्रो में जब कोई बदमाश या मनचला किसी महिला अथवा लड़की के साथ अभद्र अथवा अश्लील हरकतें करता दिखलाई पड़ता है तो हम न केवल देखकर भी अनदेखी कर जाते हैं अपितु कई बार हम स्वयं ऐसी घटनाओं का मज़ा लेने लगते हैं। क्यों नहीं चार लोग इकट्ठे होकर उसे सबक सिखाने का प्रयास करते? क्यों नहीं महिलाएँ एकजुट होकर जूते–चप्पलों से ऐसे मनचलों और बदमाशों का स्वागत करती? थोड़ा मुश्किल है लेकिन असंभव नहीं। नागपुर के अप्पू यादव का कि़स्सा तो याद ही होगा? उस बलात्कारी को कानून सज़ा देता उससे पहले ही पीड़ित महिलाओं ने उसे न्यायालय परिसर में काट डाला। यह समस्या का स्थायी समाधान नहीं अतः इस समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में देखने–समझने और हल करने का प्रयास अपेक्षित है।

इंडिया गेट पर जाकर मोमबत्तियाँ जलाना सरल है। हालांकि इंडिया गेट पर जाकर मोमबत्तियाँ जलाकर गलत का विरोध करना अथवा न्याय की मांग करना बुरा नहीं लेकिन उससे अच्छा है जहाँ भी गलत बात दिखलाई पड़े उसका विरोध किया जाए चाहे ताकि उसमें हमें परेशानी ही क्यों न उठानी पड़े। ऐसी घटनाओं के लिए वास्तव में हम दोषी हैं। सरकार और प्रशासन ही नहीं दोषी है पूरा समाज। दोषी है हर शख़्स। माना कि यह कुछ लोगों का वहशीपन है लेकिन हमारी सतर्कता को क्या हुआ? हमारी नैतिकता को क्या हुआ? हम सबकी कुछ जिम्मेदारियाँ होती हैं उनका क्या हुआ?

जब कोई बाज़ किसी निरीह चिड़िया को दबोचने की फिराक में होता है तो हम क्यों नहीं शोर मचाकर चिड़िया को सतर्क करते? क्यों नहीं स्वयं सतर्क रहते? वहशीपन अनैतिकता व अपराध है लेकिन तटस्थता भी कम अनैतिकता व अपराध नहीं। ये कुछ लोगों का वहशीपन हो या हमारी तटस्थता अथवा सरकार व प्रशासन की लापरवाही इन सबके पीछे भी कुछ कारण हैं और वो हैं सही शिक्षा, संस्कार व समाधान सरल नहीं। अपने अंतर्मन में झांकिए और स्वयं से पूछिए:

क्या मैंने कभी किसी प्रकार का उत्पीड़न अथवा किसी के उत्पीड़न का प्रयास किया?

क्या किसी रिश्तेदार, मित्र या परिचित के ऐसा करने पर उसे रोकने, सुधारने अथवा दंड देने अथवा दिलवाने का प्रयास किया?

क्या अपने बच्चों के द्वारा किए गए गलत काम पर उनका पक्ष लिया या उन्हें रोकने, सुधारने अथवा दंड देने अथवा दिलवाने का प्रयास किया?

क्या स्वयं द्वारा गलत काम करने या ऐसी मानसिकता के कारण तो तटस्थ रहने को विवश नहीं हुआ?

यदि आप अपनी स्वयं की मानसिकता बदलना चाहते हैं और वहशीपन से समाज को छुटकारा दिलाना चाहते हैं तो नए साल में ही क्यों आज ही और सदैव ही यही संकल्प कीजिए और करवाइए:

मैं न केवल स्वयं किसी पर अत्याचार नहीं करता अपितु दूसरों द्वारा किए गए अत्याचार को भी नजरअंदाज नहीं करता।

मैं जहाँ भी अत्याचार होते देखता हूँ अपनी आवाज़ उठाता हूँ।

शोषण व उत्पीड़न के विरुद्ध में तत्क्षण आवाज़ उठाता हूँ।

शोषण, अत्याचार व उत्पीड़न के विरुद्ध मैं तटस्थ होकर शोषक, अत्याचारी व उत्पीड़क के विरुद्ध आवाज़ उठाता हूँ।

ए. डी. – 106 – सी,
पीतमपुरा, दिल्ली–110 034

☞ पृष्ठ 4 का शेष

स्वास्थ सुधा और ...

ध्वनि 'अनहदनाद' को सुनने में चित लगेगा और जप की फुरसत नहीं होगी, ऊँ स्वतः उद्भव होगा। **समाधि–'तदेवार्थमात्रनिर्मासं सवरुप–शून्यमिवसमाधिः** (सू. 3) महात्मा नारायण स्वामी ने'योग रहस्य' में लिखा है कि ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय इन तीनों का ज्ञान योगी को रहता है, परन्तु समाधि में अर्थ (ध्येय) मात्र का प्रकाश रह जाता हैं ध्याता और ध्यान न रहते हों, यह नहीं होता। ये रहते अवश्य हैं। इस आवेश का फल यह होता है कि ध्याता को अपनी सुध –बुध नहीं रहती वह केवल ध्येय के प्रकाश ही में निमग्न और तल्लीन सा हो जाता है। वैदिक सम्पदा में लिखा है कि मानस यज्ञ करने वाला योगी मन को जब चित में विलीन (चित निश्चयात्मक स्थिति है) कर देता है, तब योग दर्शन के शब्दों में **तस्य प्रशान्तवाहितावृत्तिः संस्करात्** (विभूतिपाद, सू. 10) निरोध संस्कार में चित की शान्त प्रवाह वाली गति होती है, जिससे चित में सम्प्रज्ञात समाधि का परिणाम होने लगता है। मन और चित के इस प्रकार निर्माण हो जाने पर योगी जब अपने मन एवं चित को अन्य के मन और चित में आहुत कर देता है अर्थात प्रवेश कर देता है, तब वह दूसरे के मन एवं चित का भी ज्ञान प्राप्त कर लेने की स्थिति में हो जाता है। इसी रहस्य को योगदर्शन के **'प्रत्ययस्य पर चित ज्ञानम्'** (विभूतिपाद सू. 18) इस सूत्र में प्रकट किया गया है और इसी चित के आश्रय से ही अनेक सिद्धियां योगी को प्राप्त होने लगती है।

प्राणायाम के अनेक प्रकार होते हैं, उनकी सिद्धियों से योगी पानी पर चल सकता है। आसन को ऊपर उठा सकता है। शरीर को पत्थर जैसा बना सकता है। भविष्य को जान सकता है, और रोगी को स्वस्थ कर सकता है, इस प्रकार अनेकसिद्धि प्राप्त कर सकता है।

ध्यान की स्थिति सब दिन एक समान नहीं होती, इसके कई कारण हैं–शुद्धि और एकाग्रता की कमी आदि। ध्यान में जैसी मनोवृत्ति होगी, ध्याता पर ध्येय का वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। जो जिस प्रकृति का साधक होता है, वह वैसा ही ध्यान करता है और जैसा ध्यान करता है उसे वैसा ही बोध होता है। किन्तु ध्यान की परिपक्व अवस्था में सबकी स्थिति एक जैसी हो जाती है।

मु. पो. मुरारई,
जिला–वीरभूम (प. बंगाल) 731219

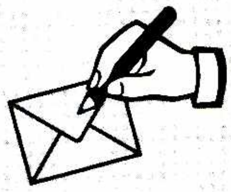

पत्र/कविता

मन्त्रगीत

"पिता-रीति प्रभु-प्रीत"

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता वान्तु भूमौ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु॥
(अथर्व 12.3.12)

लोक पिता सी प्रीति निभा लो।
प्रभुवर प्यारे गले लगा लो॥

जैसे पूत पिता से मिलता,
कर्म-कीर्ति मन अर्पण करता।
उसे देख, हो पिता प्रफुल्लित,
उसको उठ बाहों में भरता।
ऐसे ईश आप अपना लो।
प्रभुवर प्यारे गले लगा लो॥1॥

शुभ शुभ वायु बहाओ भू पर,
क्षण क्षण हमें उठाओ भू पर
आहार मृदुल आधार सबल,
सत्यानन्द मिलाओ ईश्वर।
अङ्ग अङ्ग में उमङ्ग पालो।
प्रभुवर प्यारे गले लगा लो॥2॥

तप तेजो मय संयम तारा
सदाचरण का बन उजियारा।
नर-नारी होकर व्रतधारी,
यही बनायें व्यञ्जन प्यारा।
निज व्यञ्जन सुख स्वाद चखा दो।
प्रभुवर प्यारे गले लगा लो॥3॥

देव नारायण भारद्वाज
'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम)
रामघाट मार्ग, अलीगढ़ 20 2001 (उ.प्र.)

विवाह पूर्व यौन सम्बन्धों को मान्यता न दी जाये

आजकल सरकार शादी के साथ यौन सम्बन्ध का भी उल्लेख करती है श्रीमान् जी ये दोनों शब्द पर्यायवाचक हैं। शादी के बिना यौन सम्बन्ध सिर्फ वैश्या ही करती है। कोई भी स्त्री किसी भी व्यक्ति को अपना मित्र और यौन सम्बन्धी नहीं बताती। कभी-कभी पुरुष के मरने के बाद धन की लालसा में महिला Living Relationship का हवाला देती है।

बिना विवाह के यौन सम्बन्ध स्थापित करने वाली स्त्री का समाज में कोई स्थान नहीं है। भूले-भटके अगर गर्भ ठहर जाये तो और अधिक मुश्किल। पुरुष अधिकांशतया स्वार्थी होता है, उसे इनकार करते देर नहीं लगती और कानूनी प्रक्रिया में बरसों लगते हैं। यौन सम्बन्ध रखने वाली स्त्री से विवाह क्या यौन सम्बन्ध रखना भी पसन्द नहीं करते। इसलिये स्त्रियों की भलाई इसी में है कि विवाह से पूर्व यौन सम्बन्धों को मान्यता न दी जाये। यौन सम्बन्ध होते ही महिला की गरिमा, इज्जत और कौमार्य नष्ट हो जाता है और अगर पुरुष उसकी रक्षा न करे तो वह जीवन भर दुःखी रहेगी, क्योंकि माता-पिता, भाई सास-ससुर और पड़ौसी कोई भी यौन सम्बन्ध को पसन्द नहीं करता और नवजात शिशु का भविष्य भी अंधकार में रहेगा।

जगमोहन मित्तल

****

आर्य समाज के चुनाव सम्बन्धी झगड़े कैसे समाप्त हों

आर्य समाज एक प्रगतिशील संस्था है। इसने समाज सुधार तथा देश उद्धार के लिये बड़ा कार्य किया है। अनेक व्यक्ति बिना किसी पद का लालच किये निष्काम भाव से इसके साथ जुड़े हुये थे परन्तु अव कुछ समय से पदों के लालची और स्वार्थी व्यक्ति इस में घुस पैठ कर चुके हैं जिन्होंने इसे व्यर्थ की मुकदद्मेवाजी में फंसा रखा है जिससे इसका शीर्ष संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि समा दो धड़ों में बंट गया है। जिसके कारण कई हैं। इसलिये स्थिति बड़ी चिन्ताजनक हो गई है। इससे आर्य समाज की सम्पत्तियों को हड़प लेने का खतरा पैदा हो गया है। दुख की बात यह भी है कि कोई आर्य समाज का विद्वान् अथवा नेता आगे आकर यह चुनाव सम्बन्धी झगड़ा समाप्त कराने को उद्यत नहीं है। इससे लाखों रूपया जो वेद प्रचार में लगना चाहिये था व्यर्थ ही मुकद्मेवाजी में बर्बाद हो रहा है। मैं तो एक वृद्ध साधारण कार्यकर्ता हूँ और स्वास्थय भी ठीक नहीं । परन्तु क्या कोई कर्मठ आर्य इस कार्य के लिये आगे नहीं आयेगा? मैं तो सुझाव ही दे सकता हूँ। करना यह होगा और एक तीसरा कोई निष्पक्ष व्यक्ति लिया जाय जो दोनो धड़ों को स्वीकार हो। इन तीन व्यक्तियों की चुनाव समिति हाईकोर्ट की मन्जूरी से किसी निश्पक्ष व्यक्ति को सावेर्देशिक सभा का 6 महीने अथवा एक वर्ष के लिए एडेहाक (ADHOC) प्रधान नियुक्त कर दें और वह व्यक्ति काम चलाने के लिए एक मंत्री, एक कोषाध्यक्ष तथा दो उप प्रधान नियुक्त कर दे। यह पांच आदमियों की समिति सब प्रदेशीय समाजों के उप नियमानुसार चुनाव सम्पन्न कराये उसके पश्चात् उपनियमानुसार सब प्रदेशों की सभायें सावेदशिक सभा का चुनाव करवा दें। इस से चुनाव सम्बन्धी झगड़े समाप्त हो सकते हैं। उसके बाद नई सार्वदेशिक सभा चुनाव सम्बन्धी झगड़ों को हमेशा के लिये समाप्त करने के लिये ऐसे नियम बनायेगी, तभी आर्य समाज उन्नति के पथ पर चलेगा। ऐसा मेरा सुझाव है। सार्वदेशिक सभा के चुनाव अगर शीघ्र कराना हो तो उपरोक्त तीन व्यक्तियों की चुनाव समिति सभी पुरानी रजिस्टर्ड प्रतिनिधि समाजों से उपनियमानुसार 15/15 वोटर ले कर हाइकोर्ट की मंजूरी से उनकी सूची बनाये जिन्हें वोट देने का अधिकार होगा। इस तरह चुनाव की तिथि निशिचित करके चुनाव प्रधान कोई कर्मठ युवा व्यक्ति हो चुनना चाहिये उसकी विचारधारा वैदिक सिद्धान्तानुकूल ही होनी आवश्यक है। किसी नेता अथवा विद्वान् को आगे आकर यह कार्य सम्पन्न कराना चाहिए। धन्यवाद इस प्रकार चुना गया प्रधान बाकी अधिकारी तथा अन्तरंग सभा नियुक्त कर ले।

अश्विनी कुमार पाठक
बी 4/256 सी केशवपुरम

****

जो संयम से रहता है वही सुखी रहता है।

सन्ध्या हवन के बाद आनन्द स्वामी जी ने अपने प्रवचन में चार 'स' अपनाने का उपदेश दिया। पहले 'स' से सन्ध्या करना, दूसरे 'स' स्वाध्याय करना, तीसरे 'स' से सत्संग में जाना, चौथे 'स' से सेवा करने की प्रेरणा दी। मै इसमें पाँचवा 'स' और जोड़ना चहाता हूँ जिससे संयम बनता है। जो संयम से रहता है वह सुखी रहता है। जो मात्र इन्द्रियों का दास बनकर रहता है वह दुखी रहता है। बिना संयम के जीवन ऐसा है जैसे बिना ब्रेक की गाडी। जिस गाड़ी में ब्रेक नही है वह कहीं भी दुर्घटना ग्रस्त हो सकती है। अतः जीवन में संयम का होना भी बहुत आवश्यक है।

देवराज आर्य मित्र
हरी नगर, नई दिल्ली-64

****

पर्यावरण सुखकारी (यज्ञीय) वृक्ष एवं विद्यापीठ (यूनिवर्सिटी)

● पण्डित रामस्वरुप

आर्यावर्त यानी अफगानिस्तान से ब्रह्मा, म्यामार तथा श्रीलंका से त्रिविष्टप तिब्बत। अभी ई. 2013 में इसमें 10 देश हैं। यहां के ऋषियों ने हवा पानी, उपजाऊ मिट्‌टी को दूषण और विषमयता (टॉक्सीकेशन) से बचाने को 'यज्ञ' का अविष्कार किया। इसमें मुख्य घटक हैं समिधा, शाकल्य (हवन सामग्री), आज्य तपा हुवा गोघृत। यह ध्यान में रहे कि गो उसे ही कहा जाता जिसके सर्वनाड होती ठाण में। इस कारण इसका दूध घी विष नाशक होते। काली भैंस व रंगीन भैंस (जरसी हॉलिस्टिन आदि) के दूध घी में यह विशेषता नहीं। हरिवर्ष यूरोप के जर्मनी में अग्निहोत्र विद्यापीठ (यूनिवर्सिटी) ने शोध किया तथा इस निर्णय पर पहुँचे कि यज्ञ में गोघृत के ज्वलन से वायु आदि शुद्ध होते दूषण विषमयता मिटते। विश्वविद्यालय व अन्य में एक 'गोकुल' हो। इतनी गायें हों कि शिक्षार्थी शिक्षक (व परिवार) कर्मचारी को जितना गोदूध घी चाहिये वह मिले।

इसी प्रकार विश्वविद्यालय आदि में उन वृक्षों का रोपण हो जिनसे समिधा मिले, शाकल्य बन सके। शाकल्य यानी कि हवन सामग्री को आरोग्यकारी–रोगनाशक, सुगंधित, मिष्ट, पौष्टिक बनाते हैं। कल्प शास्त्रों में गृह्य सूत्र होते जिनमें 16 संस्कारों की रीति बनाई जाती। जैसे संस्कार विधि (दयानंद गृह्य सूत्र) इसमें सामान्य प्रकरण है। वहां बताया क्षीरी वृक्ष में अपने आप सूखे उन टहनियों से समिधा बनाये। बड, गूलर, पीपल, पलाश, से जड़ी/शमी, फल वृक्षों में आम तथा बिल्व हैं समिधा के लिये। तो विद्यापीठ आदि में ये वृक्ष लगायें जायें। बड़ की कतार पश्चिम में पीपल की आधी कतार पूर्व की उत्तर तरफ वाले में लगें। शाकल्य/हवन सामग्री में रोगनाशक गुड्‌भी–गिलोय आदि है। गिलोय के लिये नीम के पेड़ हों, नीम पर चढ़ी गिलोय अधिक प्रभावशाली मानी जाती है। सुगंधित में हैं अगर, तगर, चंदन, जायफल, जावित्री आदि। मिष्ट में छुहारे के लिये पिंड खजूर के पौधे लगें। दाल के लिये अंगूर की बेले चलाई जावें। शहद के लिये मधुमक्षिका पालन करने हेतु गुलाब की खेती करली जाय। खांड के लिये गन्ने की खेती की जाय। पौष्टिक में तिल उडद जौ आदि बनाये जाने इनको भी हो खेती। पेड़ पौधों व फसलों की खेती में ध्यान रखें गाय का गोबर पकाकर जैविक उर्वरक बनाया जावे। गोमूत्र में तरह–तरह की वनोषधि जड़ी बूटी पकाकर जैविक उर्वरक बनाया जावे। गोमूत्र में तरह–तरह की वनोषधि जड़ी बूटी पकाकर जैविक कीट नियंत्रक बनाया करें। पहले से छिड़काव करें। हैवाइ वीजा है पिला है निराह फूल निकलने, फल या बीज बनते समय, करने में देरी तो किसान को परेशानी न हो।

विद्यापीठों के अलावा महाविद्यालयों आदि भी कई हैं जिनके पास कई–कई एकड़/ बीघा जमीन होती। वे भी ऊपर बताया वैसा कर सकते हैं। छात्रों छात्राओं से उत्पादक कार्य कराया जावे। अन्तः प्राध्यापक/ व्याख्याता/अध्यापक आदि भी गो एवं वृक्ष सेवा करते रहें। छात्राओं शिक्षिकाओं आदि के लिए छात्रावास (हॉस्टल) होते हैं विश्व विद्यालय आदि में। इसमें सीता, अशोक, घेर–घुमेर वाले पेड़ लगावें। सीधे–2 जाते वे आशायाला हैं अशोक नहीं। घेर घुमेर वाले असली अशोक वृक्षों से ही स्त्री जाति के मासिक चक्र संबंधी कष्ट दूर करने वाला "अशोकरिष्ट" बना करता है।

छात्र छात्रा आदि की स्मृति अच्छी हो, ऐसी बना दी जावे कि एक बार सुनने पढ़ने से याद हो जाये। यौगिक क्रियाओं के बलावा कई वनौषधि उपयोगी हैं। वे भी विद्यापीठ आदि के परिसर में लगावें। टेनिन थीन वाली चाय के बजाय छात्रा छात्र आदि तुलसीपेव ग्रहण करें।

तुलसी, शंख, पुष्पी, ब्राह्मनी के पौधे लगें परिसर में । इनका चूरा गोदूध देशी खाँड से पेय बने। यदि बर्फी बनानी है तो दालचीनी, मुलैठी, मीठी बन, मालकांगनी के पौधे लगावें विद्यापीठ आदि में, बर्फी बनाने में 4/2/1, का अनुपात इन चारों का रखें। गोदूध का मावा, छनी हुई देशी खांड से बर्फी बनालें –।

देशी गायों को एवं विद्यापीठ आदि तो विदेशी संकर किये गोदूध बढ़ाने का प्रयास भी किया करें। जिन गायों के काली भैंस से कम दूध हो उन्हें 10 लि. तक पहुँचावें। जिन गाओं का काली भैंस के बराबर दूध हो उनके गोदूध को 20 लिटर किया जावे यानी रंगीन भैंस हांलिस्टक के बराबर। असगंध, समावटी मुलैठी लोध उपयोगी हैं। डरना इनके पौधे भी विद्यापीठ/विश्वविद्यालय आदि परिसद में लगाए लावें।

पंजाब जालंधर समीप सरमस्तपुर में डी.ए.वी. विद्यापीठ (यूनि.) का परिसर 75 सकड़ में तैयार होता है। यह नेतृत्व करे,ताकि सारे ही डी.ए.वी. महाविद्यालय/ विद्यालय आदि भी ऊपर बनाये पेड़ पौधों का पालन पोषण करें।

698 गोलाई, थांवला 305026
जिला नागौर (राजस्थान)

☞ पृष्ठ 8 का शेष

मुझे जेल भेज...

की टाफियाँ निगलीं?"

बच्चे चकराये, एक ने पूछ लिया, "सर, आप क्या कह रहे हैं, हमारी समझ में नहीं आ रहा है।"

"सुनो, मैं समझाता हूँ। तुम बीड़ी पियोगे या गुटका खाओगे तो उससे कैंसर तो होगा ही। तुम बीड़ी पीते हो, मैंने कह दिया तुम कैंसर पीते हो। बात तो एक ही हुई न। सिगरेट, पान–मसाले का प्रयोग करोगे तो टी.बी. होगी ही। मैंने यही तो पूछा कि कौन टी.बी. की गोलियां खाता है? भाँग–चरस का प्रयोग करोगे तो दमा–खाँसी तो होगी ही। इनका टॉफी मानकर चूसोगे तो यह भी तुम्हारा खून चूस लेंगी।"

मैंने देखा, एक सन्नाटा सा छा गया है। सब घबरा गए। मेरा तीर निशाने पर लगा।

किस–किस के मुख में मिट्टी – एक समस्या और थी। बच्चे परस्पर गाली–गलौच करते थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा :

"यदि कोई मुँह में मिट्टी भर दूसरों पर थूके तो उसे क्या कहेंगे?" बच्चे चौंके। एक ने पूछ ही लिया,

"मुँह में मिट्टी और दूसरों पर थूकना। पहले तो यह हो नहीं सकता और यह हो भी गया तो जिस पर वह थूकेगा, वह उसका मुँह नहीं तोड़ देगा।" पर सर यह कौन करता है?"

"तुम सब करते हो?"

वे सबके सब चौंक गए। "कैसे" एक आवाज उभरी।

सुनो, ध्यान से। मुँह में मिट्टी भरना या मुँह से गाली देना, एक ही बात है। चाहे मिट्टी हो या गाली दोनों पहले मुँह में होगी, तब दूसरों को दोगे। अपना मुँह पहले गंदा होगा। दूसरे व्यक्ति ने तुम्हारी गाली स्वीकार नहीं की पर तुम्हारा मुँह तो गन्दा हो ही गया। यदि दूसरे व्यक्ति ने तुम्हारी गाली सुन ली तो वह चैन से नहीं बैठेगा। वह या तो गाली देगा या मुक्के–डंडे बरसायेगा। फिर गुत्थम–गुत्था, सिर फुटैवल और लहु–लुहान और फिर अन्त में जेल। बोलो तुममें से कितने इसी गाली–गलोच और सिर–फुटैवल के कारण जेल गए हो?"

फिर सन्नाटा, कुछ ने एक दूसरे को शंकित और भेदभरी दृष्टि से देखा कि कहीं कोई भेद न खेल दे। अब जब भी मैं उनके बीच जाता हूँ तो यदि अभ्यासवश किसी के मुँह से गाली निकल भी जाये तो वह "सारी सर!" बोल कर क्षमा याचना कर लेता है।

कौन करेगा अमृतपान : जब मुझे लगा कि बच्चों में कुछ सुधार हो रहा तो मैंने मुस्कराते हुए पूछा, "तुममें से कौन अमृत–पान करना चाहता है?"

एक शरारती बच्चे ने कहा, "सर, हमने धूम्रपान के बारे में तो सुना है पर अमृतपान के बारे में नहीं।"

"मैं तुम्हारा धूम्रपान छुड़ाकर अमृतपान कराने के लिए ही तो यहाँ आया हूँ। परमात्मा और आत्मा दोनों को अमृत कहा जाता है क्योंकि ये दोनों मरते नहीं है। तुमने एक अमृत आत्मा के द्वारा दूसरे अमृत परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करना है। यह तभी होगा जब ईश्वर या अल्लाह का सुबह–शाम स्मरण करोगे। उस निराकार ईश्वर को हर पल अपने साथ अनुभव करोगे। बोलो करोगे न?"

"जरूर करेंगे।" एक साथ कई आवाजें उभरीं।

कुछ हास्य के पल –

"सर, यदि मैं एक बात कहूँ तो आप नाराज तो नहीं होंगे?" एक बन्दी विद्यार्थी ने कहा।

"कहो"

"ये जो मोनू (काल्पनिक नाम) है, इस पर लड़कियाँ मरती है और ये बाबाओं पर मरता है।"

"कैसे?"

"ये जब भी किसी बाबा को देखता है तो दौड़कर उसकी पोटली झपट लेता है। पिछली बार फिर इसने ऐसा ही किया था पर इस बार बाबा ने एक हाथ से पोटली और दूसरे हाथ से इसका हाथ पकड़ लिया। इसे कुछ नहीं सूझा और इसने जमीन से ईंट उठाकर उसके सिर पर दे मारी। बाबा लहुलुहान।

"तब क्या हुआ?" मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"होना क्या था, बाबा हास्पिटल में, पोटली पुलिस चौंकी में और मोनू फिर हमारे साथ जेल में।"

हा! हा!! (अट्टहास)

मान्यवर, आपको पूरी कहानी सुना दी है। अब यदि मैं आपसे दुबारा पूछ ही बैठूँ कि 'मुझे जेल भिजवा दो प्लीज' तो आप क्या उत्तर देंगे – हाँ या ना?"

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम,
ज्वालापुर (हरिद्वार)

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 08-09/05/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

मान्य कुलाधिपति ने डी.ए.वी. विश्वविद्यालय के विशिष्ट स्वरुप का खुलासा किया और छात्रों के हित में उच्चस्तरीय, संतुलित, सुविधा–संपन्न पाठ्क्रमों तथा शोध–कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि ज्ञान और आध्यात्मिकता का ठोस आधार लेकर डी.ए.वी. विश्वविद्यालय छात्रों को पूर्ण मानव बनने के अवसर प्रदान करेगा, जहाँ दयानन्द और वैदिक विचार सुदृढ़ आधार प्रदान करेंगे।

इस विश्वविद्यालय से आगे और अधिक, और ऊँचे लक्ष्यों की प्राप्ति की बात करते हुए प्रधानजी ने देश–विदेश में 780 से अधिक डी.ए.वी. संस्थाओं के विस्तार का विवरण दिया और कहा कि 'Best Chain of schools in country' जैसे सम्मानों से हमें प्रेरणा और स्फूर्ति लेनी है। नये आकाश, नये आयाम, सोचने और प्राप्त करने हैं।

अंत में सर्वस्व त्यागी, आर्यसमाज की मान–मर्यादा के उन्नायक, अज्ञानान्धकार मिटाने के आंदोलन के नायक, नये पंजाब के निर्माता महात्मा हंसराज के चरणों में श्रद्धांजति देते हुए मान्य प्रधानजी ने डी.ए.वी. के भावी विकास और उन्नति की प्रार्थना की।

मान्य प्रधान जी ने 'आर्यजगत्' तथा 'आर्यन हैरिटेन' पत्रिकाओं के महात्मा हंसराज विशेषांको का विमोचन किया। इस अवसर पर पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. अरुण ग्रोवर और गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. स्वतंत्र कुमार जी को सम्मानित किया गया और डी.ए.वी. विश्वविद्यालय के नवनियुक्त कुलपति डॉ. आर.के. कोहली का स्वागत किया गया।

इस ऐतिहासिक अवसर पर त्यागमूर्ति पांच संन्यासियों–1 स्वामी सुमेधानंदजी (चम्बा), (2) स्वामी यज्ञमुनिजी (मुजफ्फरनगर), (3) स्वामी श्रद्धानंदजी (पलवल) (4) स्वामी सदानन्दजी (दीनानगर), (5) स्वामी शोभानंदजी (दीनानगर) तथा चार वैदिक विद्वानों (1) डॉ. प्रियव्रत दास (उड़ीसा), (2) डॉ. (श्रीमती) शशिप्रभा (दिल्ली), (3) पंडित सत्यपाल पथिक (अमृतसर), (4) डॉ. सोमदेव शास्त्री (मुंबई) को अंगवस्त्र (शाल) ओढ़ाकर 31,000/– रुपये की धनराशि तथा प्रशस्ति–पत्र देकर सम्मानित किया गया।

डी.ए.वी. संस्थाओं के पांच प्राचार्यों (1) श्री अनंत सहाय (सीतामढ़ी), (2) श्रीमती मंजू मलिक (दिल्ली), (3) श्रीमती अंजना गुप्ता (अमृतसर), (4) डॉ. विभा राय, (चण्डीगढ़), (5) श्रीमती अजय सरीन (गुरदासपुर) को उनकी सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया। डी.ए.वी. पब्लिक/मॉडल स्कूलों के 12वीं कक्षा की बोर्ड–परीक्षा में अधिकतम अंक पाने वाले चार छात्र/छात्राओं (1) सुश्री अंजना मंडल (दुर्गापुर), (2) सुश्री उपाजना पाल (दुर्गापुर), (3) मास्टर चेतन धीर (अमृतसर), (4) मास्टर मेहक घई (लुधियाना) को भी सम्मानित किया गया।

इसके पश्चात् कुलाधिपति श्री पूनम सूरी ने शहनाई, नगाड़ों और शंख के मंगलनाद और वेदमंत्रों के पावन उच्चारण के बीच डी.ए.वी. विश्वविद्यालय के लोकार्पण की विधिवत् घोषणा की और डा. कोहली प्रतीक स्वरूप मशाल थमायी।यह अद्भुत आह्लादकारी दृश्य था।

स्वामी सुमेधानंदजी ने अपना आध्यात्मिक आशीर्वाद दिया। डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति के उप–प्रधान डॉ. एस. के. सामा ने धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

इस अवसर पर 'आलोक–पथ' नाम से एक नृत्य–नाटिका प्रस्तुत की गई जिसमें 6 स्कूलों और एक कॉलेज के 3800 छात्र–छात्राओं ने भाग लिया। एक विशाल मंच पर सुन्दरतम प्रकाश–व्यवस्था में दी गई इस प्रस्तुति का आलेख श्री अजय ठाकुर ने किया और निर्देशन श्री उदय साहा ने दिया।

शांति–पाठ किए जाने से पूर्व 'डी.ए.वी. गान' गाया गया। यह डी.ए.वी. गान श्री अजय ठाकुरजी द्वारा लिखा गया। तथा सभी संस्थाओं को यह निर्देश दिया गया कि विद्यालयों में डी.ए.वी. गान प्रत्येक कार्यक्रम की समाप्ति पर अवश्य गाया जाए।

देशभर से 20,000 से अधिक संख्या में उमड़े जनसमूह ने आयोजन की व्यवस्थाओं की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

महोत्सव की झलकियां

मुद्रक व प्रकाशक – श्री प्रबोध महाजन, सभा मंत्री द्वारा मदन गोयल के प्रबंध में अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय 'आर्य जगत्' आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – श्री पूनम सूरी